# अन्तरिक्ष विज्ञान एवं परोक्ष का अनुसन्धान

-श्रीराम शर्मा आचार्य

# अंतरिक्ष विज्ञान
# एवं
# परोक्ष का अनुसंधान

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १८.०० रुपये

प्रकाशक
**युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट**
**गायत्री तपोभूमि**

लेखक
**पं. श्रीराम शर्मा आचार्य**

पुनरावृत्ति सन् २०११

मुद्रक :
**युग निर्माण योजना प्रेस,**
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

# अंतरिक्ष विज्ञान की नवसृजन के संदर्भ में उपादेयता

अंतरिक्ष विज्ञान, भू-विज्ञान से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जल और थल की तरह आकाश पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील मनुष्य यदि चाहे तो अपने पुरुषार्थ में एक कड़ी और जोड़ सकता है कि ग्रहों के सूक्ष्म प्रभाव से पृथ्वी के वातावरण तथा प्राणि परिवार को जो अनुकूलता-प्रतिकूलता सहन करनी पड़ती है उसके संबंध में उपयुक्त जानकारी प्राप्त करे और तदनुरूप उपाय खोज निकाले। प्राचीन काल से 'ज्योतिष विज्ञान' के दो पक्ष हैं—ग्रहों की गतिविधियाँ तथा उनकी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं की जानकारी। यह जानकारी भली प्रकार उपलब्ध रहती थी फलत: वे प्रतिकूलताओं से बचने तथा अनुकूलताओं से लाभ उठाने का मार्ग भी निकाल लेते थे। मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान को अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विकसित करके प्रगति के पथ पर बहुत आगे तक बढ़ चलने में सफलता पाई है। ग्रहविद्या का महत्त्व इन सबकी तुलना में कम नहीं वरन अधिक ही है। अन्य विज्ञान सामयिक, सीमित और संबद्ध लोगों को ही प्रभावित करते हैं, पर ग्रहों की सामर्थ्य भी प्रचंड है और क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक। ऐसी दशा में उनके साथ जुड़े हुए संबंध-सूत्रों और आदान-प्रदानों के संबंध में भी हमारी जानकारी उपयुक्त स्तर की होनी चाहिए।

मौसम से लेकर राजनीतिक घटनाक्रमों तक को देखकर लोग अपनी योजनाओं का निर्धारण-परिवर्तन करते रहते हैं। ग्रहों की स्थिति से उत्पन्न प्रभावों के संबंध में भी यह तथ्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अनुकूलताओं का, संभावनाओं का यदि पूर्वाभास मिल सके तो निश्चय ही वैयक्तिक एवं सामूहिक सुख-शांति एवं प्रगति के ऐसे सूत्र मिल सकते हैं जो उज्ज्वल भविष्य की संरचना में अत्यंत लाभदायक सिद्ध हो सकें।

अंतरिक्ष का महत्त्व विज्ञान क्षेत्र ने समझा है। इसमें भरी हुई संपदा सूक्ष्म होने के कारण धरती और समुद्र में पाए जाने वाले संपदा भंडार से कहीं अधिक है। अब तक जो कुछ भी पाया गया है उसमें जल और थल की अपेक्षा आकाश का अनुदान अधिक है। वर्षा आकाश से होती है। हवा भी आकाश में भरी है। बिजली, रेडियो, लैसर आदि के संचार आकाश से हैं। ध्वनि, ताप, प्रकाश आदि की तरंगों का प्रवाह आकाश में ही चलता है। धरती को अंतर्ग्रही अनुदान भी उसी क्षेत्र से मिलते हैं। अदृश्य जगत की सत्ता उसी का घोल है। दिव्य प्राणी इसी में निवास करते हैं। विचार तरंगें इसी में परिभ्रमण करती हैं। ऐसे-ऐसे अनेकों आधार हैं जिनसे स्पष्ट है कि दृश्य भू-मंडल की तुलना में अदृश्य आकाश में विद्यमान संपदा का महत्त्व और स्तर असंख्य गुना अधिक है।

अध्यात्मविज्ञानी तो अनादिकाल से अपनी गतिविधियों को आकाश पर केंद्रीभूत रखे रहे हैं। अदृश्य जगत-सूक्ष्म जगत ही उसका उत्पादन क्षेत्र रहा है। उस कमाई का दृश्य पृथ्वी पर तो खरच भर करते हैं। ऋद्धि और सिद्धियों का प्रयोग-प्रदर्शन ही प्रत्यक्ष है। यह तो उपार्जन का प्रयोग उपभोग करना भर है। जहाँ से यह सब कमाया जाता है वह परोक्ष है। परोक्ष का विस्तार आकाश में है। मानवी अंतराल में तो उसकी बीज सत्ता भर है। साधना का आरंभ अंतराल में किया जाता है, पर उस आरंभ को प्रतिफल तक पहुँचने के लिए अंतरिक्षीय शक्तियों का ही सहयोग लेना पड़ता है।

जिस भू-भाग पर हम रहते हैं उसका विस्तार लगभग सत्रह करोड़ वर्ग मील है एवं उसका तीन चौथाई हिस्सा पानी से ढका है। मात्र जल से भरा हुआ कुल क्षेत्र १३ करोड़ १६ लाख वर्ग मील पड़ता है। अंतरिक्ष का विस्तार असीम है। जैसे-जैसे ऊपर की ओर बढ़ते हैं अंतरिक्ष की परिधि उसी अनुपात में बढ़ती प्रतीत होती है। प्रकृति की संपदाएँ जितनी पृथ्वी के गर्भ और उससे जुड़े वातावरण में सिमटी हैं

उसकी तुलना में अंतरिक्ष में कहीं अधिक परिमाण में सन्निहित हैं। अस्तु, विस्तार की दृष्टि से ही नहीं वरन भौतिक संपदा की दृष्टि से भी अंतरिक्ष पृथ्वी की अपेक्षा कहीं अधिक संपन्न है।

ऐसी स्थिति में अंतरिक्ष विज्ञान का महत्त्व भू-विज्ञान की तुलना में कहीं अधिक बढ़ जाता है। जल और थल की तरह मनुष्य यदि चाहे तो अंतरिक्षीय खोज में एक और कड़ी जोड़कर ग्रहों की गति और स्थिति से पृथ्वी के वातावरण तथा प्राणि जगत को जिस प्रकार की अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ सहन करनी पड़ती हैं, इस जानकारी से लाभान्वित हो सकता है। प्राचीनकाल में ज्योतिर्विज्ञान आज के भौतिक विज्ञान की भाँति ही सुविकसित था। ग्रहों की गतिविधियाँ तथा उनकी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं के विषय में जानकारी ऋषिगणों को भली प्रकार उपलब्ध रहती थी। फलतः वे अनुकूलताओं से लाभ उठाने तथा प्रतिकूलताओं से बचने का मार्ग निकाल लेते थे। मनुष्य जाति ने ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं को विकसित करके प्रगतिपथ पर चढ़ चलने में अप्रतिम सफलता पाई है। अन्य विज्ञान की धाराएँ सामयिक, सीमित और संबद्ध लोगों को प्रभावित करती हैं पर ग्रहों की सामर्थ्य अधिक प्रचंड और क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। ऐसी दशा में उनके साथ जुड़े हुए संबंध और आदान-प्रदानों के संबंध में मनुष्य की जानकारी विशद होनी चाहिए।

भौतिक विज्ञान ने अंतरिक्ष का महत्त्व समझा है। सर्वविदित है कि वायु एवं जल की अथाह संपदा आकाश के पोले ईथर में भरी है। विज्ञान के ज्ञाता इस तथ्य से परिचित हैं कि बिजली, रेडियो, लैसर आदि की तरंगें आकाश में संव्याप्त होती हैं। ध्वनि, ताप, प्रकाश आदि की तरंगें आकाश में प्रवाहित होती हैं तथा अंतर्ग्रही अनुदान भी उसी क्षेत्र में मिलते हैं। अदृश्य जगत की संपदा सूक्ष्म अंतरिक्ष में ही समाहित है। विचार तरंगें इसी परिसर में परिभ्रमण करती रहती हैं। ऐसे अनेकानेक आधार हैं, जिनसे स्पष्ट है कि भूमंडल की तुलना में

अंतरिक्ष में विद्यमान साधन-संपदा का महत्त्व और स्तर असंख्य गुना अधिक है।

अध्यात्मवेत्ता अनादिकाल से ही अपनी गतिविधियों को अंतरिक्ष पर केंद्रीभूत रखे रहे हैं। उनकी सामर्थ्यों का उत्पादन क्षेत्र अदृश्य जगत—सूक्ष्म जगत रहा है। ऋद्धि-सिद्धियाँ—भौतिक और आध्यात्मिक विभूतियाँ दिखाई तो प्रत्यक्ष रूप में पड़ती हैं, किंतु इनका उपार्जन परोक्ष जगत से ही संभव हो पाता है। मानवी अंतराल में तो उसकी बीज सत्ता भर विद्यमान है परंतु वह सुविकसित होने और विभूतियों को करतलगत करने में अदृश्य सूक्ष्म जगत का ही अवलंब लेता है। साधना की तो जाती है अंतराल में, पर उसका प्रतिफल दैवी शक्तियों का सहयोग लेने पर ही मिलता है।

वैज्ञानिकों को लैसर से लेकर मृत्यु किरणों तक एक से बढ़कर एक शक्तियाँ आज आकाश से ही उपलब्ध हो रही हैं, जो सृजन अथवा ध्वंस का—दोनों का ही उद्देश्य पूरा करती रह सकती हैं। इन्हें युद्ध आदि में प्रयुक्त कर अणु विस्फोट जैसी विभीषिका उत्पन्न की जा सकती है। सदुपयोग द्वारा सुविधा-संवर्द्धन हेतु बहुमूल्य उपलब्धियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं। इन दिनों रेडियो, तार, टेलीफोन, टेलीविजन आदि संचार यंत्रों में छोटे-छोटे उपग्रहों से अनेकों देशों में काम लिया जा रहा है जो पूर्णतया सफल रहा है। यह पद्धति सरल और सस्ती भी पड़ रही है। अब मौसम में इच्छानुकूल हेर-फेर की बात भी सोची जा रही है। ऋतुओं पर नियंत्रण कर गरमी-सरदी घटा-बढ़ा लेने, इच्छानुकूल क्षेत्र में वर्षा करा लेने के प्रयोग-परीक्षण भी चल रहे हैं। यदि ये सफल रहे तो मानवी सुविधा-संवर्द्धन में भारी प्रगति हो सकती है। इस विपुल ऊर्जा के सर्वसुलभ होने के साथ-साथ समुद्र की लहरों से सीधे बिजली बना लेने और उसके खारे जल को मीठा कर लेने में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। इस स्वप्न को साकार करने में वैज्ञानिक प्रतिभाएँ जी-जान से लगी हुई हैं। उन्हें सफलता भी मिली है लेकिन

उज्ज्वल सपनों के साथ जुड़ा हुआ एक निराशाजनक पक्ष भी है। वह है—आविष्कारों एवं तकनीकी विकास से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण संकट का। इस दृष्टि से पिछली प्रगति अधिक महँगी पड़ी है।

विषाक्तता बढ़ने से आकाश में प्रदूषण इतना भर गया है, जिसके रहते मनुष्यों और प्राणियों का दुर्बलता और रुग्णता का अभिशाप सहने, अकाल मृत्यु के मुँह में चले जाने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहेगा। अंतर्ग्रही असंतुलनों में भी वृद्धि हुई है। प्रकृति-प्रकोप इन्हीं दिनों अधिक परिमाण में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पृथ्वी अन्य ग्रहों के प्रवाहों से निश्चित ही प्रभावित होती है। सौरमंडल के चक्र में बँधी होने के कारण पृथ्वी का वातावरण भी अन्यान्य ग्रहों पर प्रभाव डालता है। अस्तु, असंतुलनों और प्रकृति-विपदाओं में मनुष्य द्वारा प्रदूषित पृथ्वी के वातावरण का भी सहयोग हो सकता है, ऐसा पर्यावरण विशेषज्ञ मानने लगे हैं।

विषाक्तता के परिशोधन का कोई कारगर उपाय नहीं सूझ रहा। किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति वैज्ञानिक यह सोच रहे हैं कि संव्याप्त आणविक एवं अन्यान्य कचरे को अंतरिक्ष के किसी सुदूर कोने में फेंककर छुट्टी पा ली जाए। यह युक्ति मनुष्य के लिए कोई हानिकारक प्रभाव नहीं उत्पन्न करेगी, यह संदिग्ध है। अंतरिक्षीय क्षेत्र में बढ़ते हुए तकनीकी कदमों के साथ बढ़ते उपग्रहों की संख्या भी भावी विभीषिकाओं का एक निराशाजनक पहलू प्रस्तुत करती है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के स्टारवार की परिकल्पना एवं सुदूर अंतरिक्ष में भेजे गए 'स्पाय सेटेलाइट्स' की बढ़ती संख्या ने अब वैज्ञानिक समुदाय को यह सोचने पर विवश कर दिया है कि पृथ्वी के संसाधनों के दोहन को रोका ही जाना चाहिए, अंतरिक्ष में मानव की छेड़छाड़ के प्रतिकूल परिणामों से भी जनमानस को अवगत कराना चाहिए। ज्योतिर्विद एवं भौतिकविज्ञानी इस तथ्य को अब

पहले की अपेक्षा और भी अधिक अच्छी तरह समझने लगे हैं। धरती से वनस्पति और खनिज संपदा उपलब्ध करने के प्रयास चिरकाल से चलते आ रहे हैं। इन दिनों उनमें कटौती की गई है और अंतरिक्ष की खोज पर पूरा ध्यान केंद्रित किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि धरती और समुद्र के उपार्जन की आवश्यकता नहीं रही या वे क्षेत्र अब संपदा रहित हो गए।

अंतरिक्ष को प्रमुखता देने का अर्थ है कि वहाँ से अधिक मूल्यवान उपार्जन संभव है। उदाहरण के लिए सौर ऊर्जा को लिया जा सकता है। धरती पर कोयला, भाप, तेल, बिजली, अणु यह पाँचों ईंधन जितने उपलब्ध हो सकते हैं, वे कम भी पड़ते जा रहे हैं और महँगे भी सिद्ध हो रहे हैं। अस्तु, प्रयत्न यह चल रहा है कि सौर ऊर्जा करतलगत की जाए। यह सस्ती है और अटूट भी। लैसर से लेकर मृत्यु किरणों तक एक से एक बढ़कर ऐसी शक्तियाँ आकाश से ही उपलब्ध हो रही हैं जो अणु विस्फोट जैसे आत्मघाती युद्धोन्माद के परिणाम उत्पन्न कर सकती हैं। न केवल युद्ध विजय वरन सुविधा-संवर्द्धन की दृष्टि से बहुमूल्य उपलब्धियाँ भी उसी से मिल सकती हैं। उदाहरण के लिए तार, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन की आवश्यकता पूरी करने के लिए छोटे-छोटे उपग्रहों से काम लिया जा रहा है। यह पद्धति नितांत सरल और सस्ती है। सोचा यह जा रहा है कि आकाश विजय के साथ ऋतुओं को नियंत्रित किया जा सकेगा। जब जहाँ इच्छा हो, वहाँ उतनी वर्षा करा लेने—गरमी-सरदी को घटा-बढ़ा लेने से वनस्पति उपार्जन और प्राणियों की सुविधा में भारी प्रगति हो सकती है। सौर ऊर्जा के हस्तगत होते ही ईंधन का संकट सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो जाएगा। तब समुद्र की लहरों से बिजली बना लेना और उसके खारी जल को मीठा बना लेने में कोई कठिनाई न रहेगी। यही हैं वे स्वप्न अथवा लक्ष्य जिन्हें पूरा करने के लिए अब विज्ञान, वैभव और वर्चस्व ने मिलकर आकाश विजय की ठान, ठानी है।

प्रस्तुत संकटों में सबसे भयानक है—वायु प्रदूषण। विषाक्तता बढ़ते जाने से आकाश में कचरा इतना भर गया है कि उसके रहते मनुष्यों एवं प्राणियों के लिए दुर्बलता, रुग्णता, दुःख भोगते-भोगते अकाल मृत्यु के मुँह में चले जाने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहेगा। धुआँ, विकिरण, कोलाहल आदि ने आकाश को विषवमन करने और अभिशप्त रहने की स्थिति में डाल दिया है। इसका परिशोधन करने का कारगर उपाय एक ही है कि इस कचरे को अनंत अंतरिक्ष में कहीं अन्यत्र धकेल दिया जाए। धरती के इर्द-गिर्द फैले हुए वायुमंडल के घेरे में इस अभिवृद्धि को कैसे रोका जाए? जो भरा हुआ है उसे शुद्ध कैसे किया जाए? इन दोनों प्रश्नों के कोई उत्तर सूझ नहीं रहे हैं, साथ ही यह तक नहीं सूझ रहा है कि दिन-दिन बढ़ने वाला कचरा किस प्रकार रुक सकता है? मशीनों का चलना बंद किया जा सकना कठिन है। फिर ईंधन जलने और विषैली भाप उड़ने पर भी अंकुश कैसे लगे? इस जीवन-मरण की समस्या के लिए अपने आकाश के साथ कुछ तालमेल बिठाने की बात सोचनी पड़ रही है। अंतरिक्ष का महत्त्व ऐसे-ऐसे अनेक कारणों से स्वीकारा गया है और उसके अन्वेषण, परीक्षण, आधिपत्य से लेकर दोहन तक के लिए कदम बढ़ाया गया है।

इस संदर्भ में यह तथ्य भी ध्यान रखने योग्य है कि अंतरिक्ष क्षेत्र से अध्यात्म क्षेत्र को दूर रखने से अब काम चलने वाला नहीं है। वरन समय को देखते हुए पूर्वकाल की अपेक्षा उस क्षेत्र में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भूतकाल में अंतरिक्ष में कोई संकट नहीं था। प्रतिकूलताओं से लड़ने जैसी कोई बात नहीं थी। अनुकूलताएँ बढ़ाने भर का उद्देश्य सामने था। इसके लिए कुछ थोड़े से ही लक्ष्य और प्रयत्न पर्याप्त माने जाते थे। वर्षा पर नियंत्रण प्राप्त करने और उसके साथ प्राणतत्त्व को धरती पर उतारने की पर्जन्य-प्रक्रिया काम में लाई जाती थी, फलतः अन्न, वनस्पति एवं पशुधन की प्रचुरता तथा समर्थता का समुचित लाभ मिलता था। सतयुग में कहीं कोई अभाव नहीं था।

इस संदर्भ में मानवी प्रयत्न यज्ञोपचार द्वारा अंतरिक्ष के अनुकूलन के रूप में सफल होते रहते थे। प्राणियों के लिए सबसे प्रमुख आहार वायु है। सांस के द्वारा जो ग्रहण किया जाता है, वह मुख के द्वारा खाए और पेट के द्वारा पचाए आहार की तुलना में असंख्य गुना अधिक मूल्यवान है। यज्ञोपचार द्वारा प्राणवायु की उच्चस्तरीय मात्रा जीवधारियों को मिलती रहती थी और उनकी शारीरिक ही नहीं मानसिक स्थिति भी ऊँची रहती थी। सतयुग उन्हीं उपलब्धियों की काल परिधि को कहा जाता था।

साधना, स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिंतन द्वारा प्राणवान आत्माएँ आकाश में ऐसे प्रचंड प्रवाह छोड़ती थीं, जिनमें जनमानस को अनायास ही बहते रहने और श्रेष्ठ चिंतन के फलस्वरूप उत्पादित उच्च चरित्र का लाभ मिलता था। अंतरिक्ष उच्चस्तरीय विचार संपदा से भरा रहता था। इसमें अध्यात्म क्षेत्र के मूर्द्धन्य मनीषी सदा प्रयत्नरत रहते थे।

ज्योतिर्विज्ञान का एक और पक्ष है अंतर्ग्रही प्रवाहों में हेर-फेर कर सकने की क्षमता का उपार्जन। चेतना की शक्ति का तत्त्वज्ञान जिन्हें विदित है, वे यह भी समझते हैं कि जड़ पर नियमन करने की सामर्थ्य भी उसे प्राप्त है। शरीर के बहुमूल्य यंत्र को प्राण की चेतना ही चलाती और जीवित रखती है। रेल, मोटर, जहाज स्वसंचालित यंत्र उपग्रह आदि चलते भले ही स्वयं हों पर उनका संचालन विचारशील मनुष्य ही करते हैं। उनमें प्रचंड शक्ति विद्यमान तो है पर मात्र अपनी धुरी पर ही परिभ्रमण कर सकती है, उसे दिशा देनी हो अथवा उलट-पुलट करनी हो तो उसमें चेतना को ही अपना पुरुषार्थ प्रकट करना होगा। अंतर्ग्रही प्रवाह जैसे भी चलते हैं उनका सामान्य क्रम अपने ढर्रे पर ही चलता रहेगा। उसमें अतिरिक्त परिवर्तन करना हो तो चेतना की सामर्थ्य का ही उपयोग करना होगा। अंतर्ग्रही शक्तियों की विशालता और प्रचंडता अद्‌भुत और कल्पनातीत है। इतने पर भी यह तथ्य समझा

जाना चाहिए कि चेतन की प्राणशक्ति का प्रहार उस प्रवाह में सारे परिवर्तन कर सकता है। ऐसे परिवर्तन जो पृथ्वी के प्राणियों के लिए उत्पन्न अविज्ञात कठिनाइयों को रोकने और अदृश्य अनुदानों को बढ़ाने में समर्थ हो सकें। ग्रह विज्ञान की पूर्णता इसी में है कि स्थिति की जानकारी तक सीमित न रहकर अभीष्ट हेर-फेर भी कर सके। रोग का निदान ही पर्याप्त नहीं, कुशल चिकित्सक को रुग्णता हटाने और आरोग्य बढ़ाने का उपचार भी करना होता है। ज्योतिर्विज्ञान न केवल ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति से अवगत कराता है वरन सूक्ष्मजगत में उसके अदृश्य प्रभावों के अनुकूलन का भी प्रबंध करता है।

जो इन अविज्ञात तथ्यों को समझ सकें उन्हें यह जानने में कठिनाई न होगी कि मानव जाति के सामने प्रस्तुत अनेकानेक विभीषिकाओं के पीछे विद्यमान अदृश्य कारणों का निराकरण करने में यह विज्ञान कितना अधिक कारगर हो सकता है। नवनिर्माण के लिए मानवी पुरुषार्थ की आवश्यकता और महत्ता तो निश्चित रूप से है ही किंतु साथ ही समझना यह भी चाहिए कि इस पुण्य-प्रयोजन में अदृश्य शक्तियों का अनुकूलन भी अभीष्ट है। इस क्षेत्र की जानकारी तथा परिवर्तन की विधि व्यवस्था में ज्योतिर्विज्ञान की सहायता लेना आवश्यक है। अभीष्ट परिवर्तन में मानवी प्रयासों के अतिरिक्त अदृश्य का अनुकूलन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

इस संदर्भ में एक बात और जान लेने योग्य है कि ब्रह्मांड में मात्र जड़ ग्रहपिंड ही परिभ्रमण नहीं करते इसमें सचेतन शक्तियों का अस्तित्व, प्रयास, प्रभाव भी कम नहीं है। ब्राह्मांड के शोधकर्त्ता अब इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि अंतरिक्ष में पृथ्वी जैसी स्थिति कितने ही अन्य ग्रहों की भी है और उनमें मनुष्यों से भी अधिक विकसित प्राणी रहते हैं। उनका ज्ञान और विज्ञान धरती निवासियों की तुलना में कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा है। यह कपोल-कल्पना नहीं है। अब ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों में न केवल विकसित

स्तर के प्राणियों के अस्तित्व की संभावना है, वरन वे अंतर्ग्रही उड़ानों द्वारा पृथ्वी निवासियों के साथ संपर्क साधने के लिए प्रयत्नशील भी हैं।

अंतरिक्ष में अवस्थित इन सुविकसित प्राणियों के साथ संपर्क साधना संभव हो सके तो निश्चित ही मनुष्यों को विशेष लाभ प्राप्त होगा। निश्चय ही इतनी बड़ी सभ्यता के अधिकारी धरती जैसी दरिद्र और उस पर रहने वाले पतित-पीड़ित लोगों पर आक्रमण करने और यहाँ से लूट ले जाने के लिए इतनी कष्टसाध्य यात्राएँ नहीं कर सकते। उनका उद्देश्य इस लोक के प्राणियों को अपनी उपलब्धियों से लाभान्वित करना ही हो सकता है। भारत के ऋषि-मुनि समस्त संसार में ज्ञान और विज्ञान का वितरण करने के सदुद्देश्य से परिभ्रमण करते रहे हैं। इससे कम सदुद्देश्य इन अंतर्ग्रही महामानवों का भी नहीं हो सकता। वे हमसे संपर्क साधने का प्रयत्न करते हैं, पर वह सधता नहीं। क्योंकि इन लोकवासियों की क्षमता उनकी ओर हाथ बढ़ाने एवं सहयोग करने की नहीं है। इस क्षेत्र में अधिक बाधक अंतर्ग्रही विशिष्ट विज्ञान के संबंध में अपना अनजान होना ही है। यह विद्या प्राचीनकाल की तरह विकसित स्तर की रही होती तो वह संपर्क सध सका होता जिसके लिए उड़नतश्तरियों में अंतर्ग्रही यानों में बैठकर आने वाले महाप्राण प्रयत्नशील हैं।

प्राचीनकाल में नारद आदि 'विशिष्ट' अंतर्ग्रही यात्राएँ करते रहे हैं। लोक-लोकांतरों में उनके परिभ्रमण का जो वृत्तांत मिलता है वह सही है, निश्चय ही उस सफलता का आधार वह उच्चस्तरीय ज्योतिर्विज्ञान ही रहा होगा जो इन दिनों एक प्रकार से लुप्त ही हो गया है एवं उसका स्थान भाग्यवाद पर आधारित फलित ज्योतिष ने ले लिया है।

प्रेतों और पितरों के संबंध में आस्तिक और नास्तिक, श्रद्धालु और तार्किक कुछ न कुछ जानते और मानते हैं। इनकी भी एक दुनिया है। परलोक, प्रेतलोक, स्वर्ग, नरक आदि के नाम से इसकी चर्चा होती

रहती है। यह भी जीवित मनुष्यों जैसी एक दुनिया है। आदान-प्रदान का रास्ता खुला रहता तो जिस प्रकार जलचरों और नभचरों का अस्तित्व मनुष्यों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करता है उसी प्रकार इन दिवंगत आत्माओं का सहयोग जीवितों के लिए कई प्रकार से उपयोगी हो सकता है। जीवाणु, परमाणु, विषाणु की जानकारी ने मानवी सुविधा क्षेत्र को बढ़ाया है। अनंत अंतरिक्ष में बसी हुई इन सूक्ष्म शरीरधारियों की दुनिया यदि जीवितों के साथ सहकार बना सकी होती तो दिवंगतों को अतृप्त घूमना न पड़ता और मनुष्य को उनके दिव्य सहयोग से वंचित रहना पड़ता। दिवंगत स्वजन संबंधियों के साथ प्रेमाचार तो और भी अधिक सरल है।

देवता इससे ऊँची स्थिति की चेतनसत्ता है। सौरमंडल के ग्रह और उपग्रह भौतिक दृष्टि से रासायनिक पदार्थों से बने, बड़े आकार वाले चलते-फिरते ढेले भर हैं किंतु आत्मविज्ञानी जानते हैं कि प्रत्येक जड़ सत्ता का एक चेतन 'अभियान' होता है। उसी के नियमन में इन घटकों को अपनी गतिविधियाँ उपयुक्त रीति से चलाने का अवसर मिलता है। नवग्रहों को अध्यात्मशास्त्र में देवता माना गया है। खगोल विद्या में वे पदार्थ पिंड गिने जाते हैं। अपने-अपने स्थान पर दोनों परिभाषाएँ सही हैं। दिव्यदर्शियों ने तैंतीस कोटि देवता गिनाए हैं। कोटि का अर्थ यहाँ 'करोड़' नहीं 'श्रेणी' ही समझा जाना चाहिए। इस समुदाय में ग्रहपिंड, नीहारिकाएँ, पंचतत्त्व, पंच प्राण, देवदूत, जीवन मुक्त, व्यवस्थापक, सहायक वर्ग की उन दिव्य सत्ताओं को गिना जा सकता है जो परब्रह्म न होते हुए भी उसकी व्यवस्था में हाथ बँटाती रहती हैं। देवाराधन की प्रक्रिया से इन्हीं के साथ संपर्क साधने और आदान-प्रदान का द्वार खोलने का प्रयत्न किया जाता है।

भूमंडल से बाहर अनंत अंतरिक्ष बिखरा पड़ा है। विज्ञान ने पृथ्वी तथा उसके संबंध वाले अति निकट क्षेत्र से संपर्क साधा और अनुसंधान किया है। इससे बाहर का ब्रह्मांड विस्तार अत्यंत व्यापक है। इसमें

पदार्थ भी है और चेतना भी। ग्रह-नक्षत्रों से लेकर असंख्य स्तर की ऊर्जा तरंगों तक का पदार्थ भांडागार इसी ब्रह्मांड में समाया हुआ है। पितरों से लेकर महाप्राण और देव समुदाय तक के अनेकों सूक्ष्म शरीरधारी इसी विस्तार में निवास करते और अपना विशिष्ट संसार चलाते हैं। इस प्रत्यक्ष और परोक्ष का आज एकदूसरे के साथ ऐच्छिक आदान-प्रदान स्थापित नहीं हो पा रहा है। प्रकृति-प्रवाह से जो अनायास ही मिल जाता है उतने भर से संतुष्ट रहना पड़ रहा है।

युग परिवर्तन और नवसृजन के लिए मात्र मनुष्यों के ज्ञान एवं साधना का नियोजन तो होना ही चाहिए, पर उतने से ही इतना बड़ा कार्य संपन्न हो नहीं सकेगा। परिवर्तन की अधिकांश प्रक्रिया सूक्ष्म जगत में संपन्न होगी। प्रत्यक्ष में तो उसकी प्रतिक्रिया भर दृष्टिगोचर होगी। इस प्रयोजन के लिए जाग्रत आत्माओं की तत्परता और विभूतियों की सहायता जहाँ अपेक्षित है, वहीं परोक्ष का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जाना है। ज्योतिर्विज्ञान का नव-निर्धारण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनिवार्य है।

भौतिक विज्ञान तथा उसका तकनीकी ज्ञान प्राचीनकाल में इतना सुविकसित न था पर जिन उपलब्धियों के लिए अंतरिक्षविज्ञानी प्रयत्नशील हैं, वे सारे प्रयोजन ज्योतिर्विज्ञान द्वारा गणना आदि के माध्यम से पूरे कर लिए जाते थे। अंतरिक्ष के अंतराल में ग्रह, नक्षत्रों की स्थिति, अनुदान तथा उनके हानिकारक प्रभावों की जानकारी ज्योतिर्विज्ञान देता था। आत्मविज्ञान उनसे लाभ उठाने, प्रतिकूलताओं से सुरक्षा-उपचार की विधि-व्यवस्था जुटाता था। अतीत की खोई हुई इस महान विद्या ज्योतिर्विज्ञान की विलुप्त कड़ियों को ढूँढ़ने की पुनः आवश्यकता है। इस विज्ञान की पुनर्प्रतिष्ठा हो सके तो विज्ञान से कदम से कदम मिलाकर चलते हुए बिना किसी क्षति के अंतरिक्ष जगत से एक से बढ़कर एक भौतिक एवं अन्यान्य अनुदानों के रूप में लाभान्वित हो सकना संभव है। ❐

# ज्योतिर्विज्ञान एवं भौतिकी का समन्वय हो

शरीर के किसी भाग पर आघात पहुँचता है तो उसकी प्रतिक्रिया से शरीर का रोम-रोम काँप उठता है। मन और मस्तिष्क भी उद्विग्न हो उठते हैं। समूचा ध्यान शारीरिक पीड़ा पर केंद्रित हो जाता है। मनः-संस्थान असंतुलित हो तो शरीर भी स्वस्थ एवं नीरोग नहीं रह पाता। शरीर का प्रत्येक अवयव, मनःसंस्थान परस्पर एकदूसरे की स्थिति से प्रभावित होते हैं। यह शरीर की चैतन्यता एवं एकता के प्रमाण हैं। दृश्य और अदृश्य प्रकृति—समूचा ब्रह्मांड भी इसी प्रकार एक चेतन पिंड है जिसके सभी घटक परस्पर एकदूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसके एक सिरे पर जो कुछ भी घटित होता है तो अन्यान्य स्थानों पर उसकी प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है।

इस तथ्य को प्रतिपादित करने एवं रहस्योद्घाटन करने का विज्ञान, भारत में प्राचीनकाल से प्रचलित ज्योतिष विज्ञान के नाम से जाना जाता रहा है। इसका लक्ष्य था अंतर्ग्रही संबंधों की वैज्ञानिक विवेचना करना तथा एकदूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों से अवगत कराना। फलतः इस विद्या के सहारे पृथ्वी से इतर ग्रह-नक्षत्रों के अनुदानों से लाभ उठा सकना एवं दुष्प्रभावों से बचाव कर पाना सुलभ था जो आज विकसित भौतिक विज्ञान द्वारा भी संभव नहीं है। कालांतर में यह विज्ञान विलुप्त होता गया और उसका स्थान फलित ज्योतिष की मूढ़-मान्यताओं एवं भ्रांतियों ने ले लिया। जिसे देखकर विज्ञजनों द्वारा इस विद्या की उपेक्षा हुई।

इसके बावजूद भी विज्ञान ने जब से प्रौढ़ता की ओर कदम रखा है उसका ध्यान अंतरिक्ष की खोज-बीन की ओर आकर्षित हुआ है।

साथ ही ग्रह-नक्षत्रों, सौरमंडल की गतिविधियों, आपसी संबंधों एवं परस्पर एकदूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों को जानने के लिए छिटपुट प्रयास भी चल रहे हैं। प्रकारांतर से भौतिक विज्ञान अब उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँच रहा है जिस पर सदियों पूर्व तत्त्ववेत्ता ऋषि जो ज्योतिर्विज्ञान के मर्मज्ञ भी थे पहुँच चुके थे।

ज्योतिर्विज्ञान के आचार्यों ने सौरमंडल के ग्रह-नक्षत्रों को देवशक्तियों के रूप में प्रतिष्ठापित किया था। नौ ग्रहों की नौ देवताओं के रूप में प्रतिष्ठापना की गई है। ज्योतिर्विज्ञान की यह मान्यता सदियों से चली आ रही है कि सौरमंडल का अधिपति सूर्य मात्र अग्नि का धधकता पिंड नहीं है अपितु जीवन, प्राण और सक्रिय अग्नि का पुंज है। जो पल-प्रतिपल अपने सौरमंडल के सदस्यों को अपनी गतिविधियों से प्रभावित करता है। न केवल सूर्य बल्कि मंगल, बृहस्पति, बुध आदि भी पृथ्वी के वातावरण को प्रभावित करते हैं।

इस तथ्य को विश्व के प्रसिद्ध भौतिकविद् भी स्वीकार करने लगे हैं कि सौरमंडल की गतिविधियाँ पृथ्वी के वातावरण एवं परिस्थितियों पर प्रभाव डालती हैं। यूगोस्लाविया के नाभिकीय भौतिकविद् प्रो. 'स्टीवेन डेडीजर' जैसे विद्वानों का कहना है कि विज्ञान को अपनी अंतरिक्षीय खोज की सफलता के लिए प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान का अवलंब लेना होगा। प्राकृतिक घटनाओं की अभी भी कितनी गुत्थियाँ ऐसी हैं, जिनको सुलझा पाने में आज का विकसित विज्ञान भी असमर्थ है। आधुनिक विज्ञान अंतरिक्ष एवं सबन्यूक्लियर क्षेत्र में अपनी शानदार सफलता के बावजूद भी ब्रह्मांड संबंधी घटनाओं की व्याख्या कर पाने में अपनी अक्षमता व्यक्त कर रहा है, क्योंकि इसका क्षेत्र सीमित है। इसके विपरीत ज्योतिष विज्ञान का ब्रह्मांडीय ज्ञान अंतरिक्षीय रहस्यों का उद्घाटन करने में पूर्णतया सक्षम है।

भौतिक विज्ञान के सिद्धांतानुसार हर पदार्थ कण इस ब्रह्मांड में एकदूसरे के सापेक्ष गतिशील है। वे अपना स्थान भी परिवर्तित करते रहते हैं। फलत: जिस पर्यावरण में वे गतिशील रहते हैं, वह बदलता रहता है और एक अविच्छिन्न ब्रह्मांडीय शृंखला में बँधे होने के कारण कणों का संदोह विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है। जो अन्यान्य ग्रहों तथा पृथ्वी, चर-अचर पदार्थों एवं खगोलीय पिंडों को प्रभावित करता है। इस तथ्य से परिचित होते हुए भी विज्ञान ग्रह-नक्षत्रों की गतिस्थिति और प्रभावों की स्पष्ट जानकारी देने में असमर्थ है। उपरोक्त टिप्पणी देते हुए भौतिकविद् स्टीवेन डेडीजर का कहना है कि समग्र जानकारियों के लिए ज्योतिर्विज्ञान के विलुप्त ज्ञान को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

प्रख्यात आस्ट्रियाई वैज्ञानिक एरनेस्ट मैक का मत है कि ब्रह्मांड के अनंत कण एकदूसरे से जुड़े हुए हैं तथा उनमें घना संबंध है। सौर लपटें जो कि ग्रहों की निकटता एवं चंद्रमा की गति से किसी न किसी प्रकार संबंधित हैं, पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के व्यतिरेक उत्पन्न करती हैं। ग्रही योग पृथ्वी एवं जैविकीय चुंबकत्व पर अपना प्रभाव डालते हैं। ग्रहों के असंतुलन से उत्पन्न होने वाली चुंबकीय आँधी, प्रकृति-प्रकोपों एवं पृथ्वी के जीवधारियों में अनेकों प्रकार के मानसिक एवं नर्वस सिस्टम के रोग उत्पन्न करती है। भू-चुंबकत्व में होने वाले हेर-फेर से मानवी आचरण और स्वभाव भी अछूता नहीं रहता है।

ब्रह्मांड रसायनशास्त्री प्रोफेसर ब्राउन का मत है कि पृथ्वी सौर-मंडल की ही एक सदस्य है और चंद्रमा उसका ही एक उपग्रह। वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी और चंद्र की उत्पत्ति सूर्य से हुई है। न केवल चंद्र और सूर्य वरन मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि की युतियाँ भी पृथ्वी को प्रभावित करती हैं। उन्होंने अंतर्ग्रही प्रभावों को 'समानुभूति' नाम दिया है।

कुछ दिनों पूर्व अहमदाबाद में तीसरी अंतर्राष्ट्रीय विषुवतीय वायुविज्ञान गोष्ठी का उद्घाटन हुआ। अहमदाबाद भौतिक अनुसंधान शाला के दो वैज्ञानिकों प्रो. के. आर. रामनाथन और डॉ. एस. अनंत कृष्णन ने यह घोषणा की है कि पृथ्वी सौरमंडल की अभिन्न घटक है। आकाशीय पिंडों के स्पंदन धरती को भी व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। अपनी एक खोज में इन वैज्ञानिकों ने पाया कि वायुमंडल के 'डी' क्षेत्र में शक्तिशाली एक्स किरणों के स्रोत स्कोपिओ ११ के गुजरने से वनस्पति एवं जीव जगत की हलचलें बढ़ जातीं तथा उनका हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

परमाणु शक्ति आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष और विश्वविख्यात भौतिकविद् डॉ. साराभाई ने विभिन्न देशों से आए वैज्ञानिकों की एक गोष्ठी को संबोधित करते हुए कहा कि सूर्य के अतिरिक्त भी अन्य आकाशीय पिंडों का प्रेक्षीय प्रभाव धरती पर आता है। यदि ज्योतिर्विज्ञान के सूत्रों को ढूँढ़ा जा सके और अंतरिक्षीय ज्ञान में प्रयुक्त किया जा सके तो अनेकों महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ हाथ लग सकती हैं।

रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमोर देस्यातोब ने इस संबंध में व्यापक शोध कार्य किया है। उनका कहना है कि पृथ्वी पर समय-समय पर आने वाले चुंबकीय तूफानों से धरती के निवासियों में स्नायविक एवं मनोरोगों की बहुलता देखी जाती है। धरती पर चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता या फ्रीक्वेंसी बदलना आकाशीय पिंडों के ऊर्जा प्रवाह के परिणाम हैं। अपनी आरंभिक खोजों में ब्लादीमोर ने यह पाया था कि सूर्य पर एक विशेष प्रकार के ज्वाला प्रकोप (फ्लेयर) फूटते हैं तो धरती पर प्रचंड चुंबकीय तूफान आते हैं जिनसे प्रभावित तो सभी होते हैं, पर कमजोर मनःस्थिति वाले व्यक्तियों पर उनकी प्रतिक्रिया अत्यधिक दिखाई पड़ती है। आत्महत्याएँ, हत्याएँ एवं असंतुलन के फलस्वरूप सड़क दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों का कहना है कि मस्तिष्कीय क्रियाक्षमता का मूलभूत स्रोत अल्फाइनर्जी धरती के

चुंबकीय क्षेत्र से जुड़ा हुआ है और भू-चुंबकत्व का सीधा संबंध आकाशीय पिंडों से है। इसलिए मानवी जीवन अंतरिक्षीय घटनाक्रमों एवं शक्तियों से विलक्षण रूप से संबंधित है। अस्तु, अंतरिक्ष में पैदा होने वाली हर हलचल पृथ्वी, मानवी प्रकृति, मन, बुद्धि एवं चेतना को प्रभावित करती है।

प्रसिद्ध खगोलशास्त्री पास्कल का कहना है कि सूर्य और चंद्रमा के द्वारा आरोपित सशक्त खिंचाव से सभी परिचित हैं जो समुद्रों-सागरों में ज्वार-भाटे उत्पन्न करते हैं। ये जीवधारियों पर भी अपना प्रभाव छोड़ते हैं। पास्कल के अनुसार, "समस्त जीवधारी कंपायमान समष्टिगत ऊर्जा के एक विशाल समुद्र में निवास करते हैं फिर विभिन्न ग्रहों से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा तरंगों से अप्रभावित कैसे रह सकते हैं।" भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में यह तथ्य अगले दिनों सप्रमाण पुष्ट होगा कि पृथ्वी पर विद्यमान जीवन का अंतरिक्ष के ग्रह-नक्षत्रों से घना संबंध है और अविज्ञात होते हुए भी सूक्ष्म आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता है।

प्रौढ़ता को प्राप्त करता हुआ विज्ञान अब उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँच रहा है जिन पर सदियों पूर्व भारतीय तत्त्ववेत्ता ज्योतिर्विद पहुँच चुके थे। समूचा ब्रह्मांड एक ही चैतन्य शरीर है जिसका प्रत्येक स्पंदन हर घटक को प्रभावित करता है। जिसमें पृथ्वी और संबंधित वातावरण, वनस्पति एवं जीवधारी भी सम्मिलित हैं। प्राचीनकाल में ज्योतिष विज्ञान इसी दिशा में अनुसंधान करने, प्रमाण जुटाने और अंतर्ग्रही तथ्यों की खोज-बीन करने में सचेष्ट था, जिसकी अनेकानेक उपलब्धियों से समय-समय पर मानव जाति लाभान्वित होती रहती थी।

चिरपुरातन ज्योतिर्विद यह भलीभाँति जानते थे कि ग्रह-नक्षत्रों, सौरमंडल की गतिविधियों, उनके आपसी संबंधों और परस्पर एक-दूसरे पर, पृथ्वी के वातावरण, वृक्ष, वनस्पति एवं जीवधारियों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी देने के अतिरिक्त भी ज्योतिष विज्ञान

का एक पक्ष है—सूक्ष्म अंतरिक्ष में चलने वाले चैतन्य प्रवाह और उनकी भली-बुरी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराना। एकांगी सौर गतिविधियों की जानकारी तो आज के विकसित खगोलशास्त्र और संबंधित आधुनिकतम यंत्रों द्वारा भी मिल जाती है। सशक्त रेडियो टेलिस्कोपों से लेकर अंतरिक्ष में प्रक्षेपित स्थापित कृत्रिम सेटेलाइट्स हजारों की संख्या में अंतरिक्ष की विभिन्न कक्षाओं में घूमते हुए यह सीमित प्रयोजन पूरा कर ही रहे हैं। ग्रह, नक्षत्रों, तारा पिंडों के स्वरूप, स्थिति एवं गति के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञान दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है और कितने ही नवीन तथ्यों का आविष्कार हो रहा है। यह ज्ञान उपयोगी और मानवी प्रयास प्रशंसनीय है।

इतने पर भी ज्ञान का वह पक्ष अभी भी अछूता है जिसके सहारे सूक्ष्म अंतरिक्षीय चैतन्य प्रवाहों की जानकारी मिलती थी। उपयोगी प्रवाह को पकड़ने, लाभ उठाने और हानिकारक से बचाव करने की बात सोची जाती थी। यह महत्त्वपूर्ण प्रयोजन भी ज्योतिर्विद्या में प्राचीन काल में भलीभाँति समाहित था, जिसका चेतना विज्ञान खगोल जानकारियों की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान और मनुष्य जाति के लिए उपयोगी था, जिसके सहारे प्रकृति की हलचलों में भी हेर-फेर की बात सोची और सामूहिक आध्यात्मिक उपचारों की व्यवस्था बनाई जाती थी।

प्रगति की ओर आगे बढ़ते हुए विज्ञान कल नहीं तो परसों वहाँ पहुँचने वाला है, जिसके सहारे भावी अंतरिक्षीय घटनाक्रमों के विषय में पूर्व ज्ञान प्राप्त कर सके। कई बार भविष्य विज्ञानियों के प्रकृति-विक्षोभों के संबंध में कथन सही भी उतरते हैं। संभव है कि अगले दिनों वे और भी यथार्थता के निकट पहुँचें, पर इतने पर भी मूलभूत समस्या का समाधान नहीं निकलता। कहने का आशय यह है कि अंतर्ग्रही असंतुलनों के कारण जानने एवं निवारण के लिए उपचारों के अभाव में अंतर्ग्रही जानकारी मात्र होने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं

है। अस्तु वैज्ञानिक प्रयास उत्साहवर्द्धक एवं सराहनीय होते हुए भी एकांगी और अपूर्ण हैं।

आएदिन भूकंप, तूफान, चक्रवात, भूस्खलन, बाढ़, ज्वालामुखियों का फटना जैसी प्रकृति की विभीषिकाएँ अपनी विनाशलीला पृथ्वी पर रच जाती हैं। मनुष्य मूक असहाय बना उन्हें देखता और अपनी बेबसी पर आँसू बहाता है। आँकड़े एकत्रित किए जाएँ तो पता चलेगा कि प्रतिवर्ष विश्व भर में युद्धों-बीमारियों से मरने वालों की तुलना में प्रकृति-प्रकोपों से जान गँवाने वालों की संख्या कहीं अधिक होती है। भौतिक संपदा का एक बड़ा भाग प्रकृति-विक्षोभ लील जाते हैं और मानवी पुरुषार्थ पर निर्दयतापूर्वक पानी फेर जाते हैं। जितनी संपदा प्रकृति-विक्षोभों के कारण नष्ट हो जाती है, वह किसी प्रकार सुरक्षित रहती तो उससे प्रगति में भारी योगदान मिल सकता था। प्रस्तुत होने वाली विभीषिकाओं की यदि किसी प्रकार विज्ञान द्वारा जानकारी मिल जाए तो भी उन्हें रोक सकने, सूक्ष्म अंतरिक्ष में पक रही घटनाओं में हेर-फेर कर पाने में भौतिक विज्ञान अभी भी असमर्थ है। वह तकनीक अभी तक विकसित नहीं हो पाई है जिसके माध्यम से यह प्रयोजन पूरा हो सके।

प्राचीनकाल में ज्योतिर्विज्ञान के आचार्य न केवल अंतर्ग्रही गतिविधियों के ज्ञाता होते थे वरन आत्मविज्ञान, चेतना विज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी पहुँच होती थी। फलतः सौरमंडल की जानकारियाँ प्राप्त करने के साथ-साथ उनमें अभीष्ट हेर-फेर करने के आध्यात्मिक उपचारों से परिचित होने से समय-समय पर इस प्रकार के प्रयोग-परीक्षण भी किए जाते थे। ऐसे कितने ही उल्लेख आर्षग्रंथों में मिलते हैं जिनमें मंत्रशक्ति का प्रयोग प्रकृति-विप्लवों को रोकने, वर्षा कराने, असंतुलनों के निवारण में समय-समय पर किया जाता रहा है। सूर्य-सविता की उपासना किसी समय घर-घर प्रचलित थी। भारत ही नहीं जापान, चीन, इंग्लैंड, रोम, जर्मनी आदि स्थानों पर भी सूर्य

उपासना के प्रचलन का उल्लेख विविध ग्रंथों में मिलता है। सूर्य सौरमंडल के सदस्यों का मुखिया है। पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रभाव भी उसी का पड़ता है। अन्यान्य ग्रह सूर्य के साथ मिलकर अपनी प्रतिक्रियाएँ पृथ्वी पर प्रकट करते हैं। अस्तु, सूर्य उपासना विज्ञानसम्मत और विविध प्रयोजनों के लिए विविध रूपों में प्रचलित थी। मंत्रशक्ति, यज्ञोपचार आदि द्वारा वर्षा पर नियंत्रण प्राप्त करने, प्राणतत्त्व को धरती पर उतारने जैसे प्रयोग सुलभ थे।

चेतना की सामर्थ्य जड़ की तुलना में कई गुना अधिक है। जड़ प्रकृति पर नियमन नियंत्रण ही नहीं, उसमें हेर-फेर करने में भी वह सक्षम है। अंतर्ग्रही चैतन्य प्रवाह को उलटना-पलटना हो तो चेतना की सामर्थ्य का ही उपयोग करना होगा। अंतर्ग्रही शक्तियों की विशालता और प्रचंडता अद्‌भुत और विलक्षण है। इतने पर भी चेतना की प्राण शक्ति द्वारा सुव्यवस्थित साधनाक्रम को अपनाकर प्राण प्रहार द्वारा उस प्रवाह में परिवर्तन कर सकना संभव है। ऐसे परिवर्तन जो पृथ्वी के जीवधारियों के लिए उत्पन्न अविज्ञात कठिनाइयों को रोकने और अदृश्य अनुदानों को बढ़ाने में समर्थ हो सकें। खगोल विज्ञान की पूर्णता ज्योतिर्विज्ञान में है जो अपने में चेतना विज्ञान की सामर्थ्य को भी समाहित किए हुए है। कुशल चिकित्सक रोग का निदान ही पर्याप्त नहीं समझते, रुग्णता हटाने और आरोग्य हटाने का उपचार भी सोचते हैं। ज्योतिर्विज्ञान केवल ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति से ही अवगत नहीं कराता अपितु अदृश्य प्रभावों के अनुकूलन का भी प्रबंध करता है।

इस संदर्भ में एक बात और समझने योग्य है कि सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह भौतिक दृष्टि से रासायनिक तत्त्वों से बने और बड़े आकार के गतिशील पिंडमात्र नहीं हैं। आत्मवैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक जड़ सत्ता का एक चेतन अभियान होता है। उसी के नियंत्रण से इन घटकों को अपनी गतिविधियाँ चलाने का अवसर मिलता है। नवग्रहों को ज्योतिर्विज्ञान में नव देवता माना गया है, जबकि खगोलशास्त्री

इनकी चेतन विशेषताओं से अपरिचित होने के कारण मात्र पदार्थ पिंड मानते हैं। आत्मवेत्ताओं ने तैंतीस कोटि देवता गिनाए हैं। यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ से नहीं श्रेणी से है। इस समुदाय में ग्रह पिंड, नीहारिकाएँ, पंचतत्त्व, पंचप्राण, देवदूत, जीवनमुक्त पितर जैसी सूक्ष्म अदृश्य दिव्य सत्ताओं को गिना जा सकता है, जो सृष्टि के सुसंचालन में हिस्सा बँटाती हैं।

भूमंडल का विस्तार सीमित है—अंतरिक्ष का अनंत। जितनी संपदा पृथ्वी तथा इसके निकटवर्ती वातावरण में है उससे असंख्यों गुना अधिक अंतरिक्षीय परिकर, परिसर में संव्याप्त है, जिसमें पदार्थ भी हैं और चेतना भी। पितरों से लेकर देव समुदाय के सूक्ष्म शरीरधारी तथा महाप्राण की शक्तियाँ इसी विस्तृत अंतरिक्ष में निवास करती हैं। इस प्रत्यक्ष और परोक्ष जड़ तथा चेतन की शक्तियों का तारतम्य न मिल पाने से कितने ही अनुदानों से वंचित रहना पड़ता है और मात्र प्रकृति-प्रवाह जो सहज ही मिल जाता है उतने भर से पृथ्वीवासियों को संतुष्ट रहना पड़ता है।

सूक्ष्म के अंतराल में बहुत कुछ ऐसा है, जिसे ग्रहण करने की विद्या से यदि मानव परिचित हो तो स्वयं भी लाभान्वित हो सकता है एवं समष्टिगत हलचलों को भी प्रभावित कर सकने में समर्थ हो सकता है। ज्ञान और विज्ञान के संगम से अदृश्य जगत के सूक्ष्म स्पंदनों का ग्रहण कर सकना भलीभाँति संभव है। चिरपुरातन ज्योतिर्विज्ञान इसी विद्या का प्रतिपादन करता आया है।

ज्योतिर्विज्ञान को समन्वित किए बिना अंतर्ग्रही टोह एवं अंतरिक्षीय खोज-बीन करने में विज्ञान उतना सक्षम नहीं है। इस दिशा में प्राचीन भारतीय ज्ञान सहायक सिद्ध हो सकता है। इस विषय पर भारतीय प्राचीन ज्योतिर्विदों ने गहन अनुसंधान किए एवं निष्कर्ष निकाले हैं। आर्यभट्ट का ज्योतिष सिद्धांत, कालक्रियापाद, गोलपाद, सूर्य सिद्धांत और उस पर नारदेव, ब्रह्मगुप्त के संशोधन, परिवर्द्धन, भास्कर स्वामी

का महाभास्करीय आदि दुर्लभ और अमूल्य ग्रंथ अनेकानेक रहस्यों एवं निष्कर्षों से भरे पड़े हैं। ज्योतिष सिद्धांत पुस्तक के प्रथम पाद में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के सिद्धांत समझाए गए हैं। मात्र तीस श्लोकों में दशमलव, वर्ग, क्षेत्रफल, घनमूल, त्रिभुजाकार शंकु का घनफल निकालने जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों की जानकारी सूत्र रूप में आबद्ध है। कालक्रियापाद में खगोलशास्त्र का विशद वर्णन है। इसी तरह उसका अंतिम पाद ५० श्लोकों का अध्याय 'गोलपाद' अपने में ज्योतिष विज्ञान के महत्त्वपूर्ण रहस्यों पर प्रकाश डालता है। अपने पंच सैद्धांतिक में वाराहमिहिर ने पौलिश, रोमक, वाशिष्ट, सौर और पितामह नामक पाँच ज्योतिर्सिद्धांतों का वर्णन किया है जो ज्योतिर्विज्ञान पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं। ज्योतिर्विज्ञान के शोधकर्त्ताओं के लिए अतीत के महान ज्योतिर्विदों द्वारा संग्रहीत किया गया यह ज्ञान पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

यह तथ्य निर्विवाद है कि पुरातन और नवीन का समन्वय बिना किसी पूर्वाग्रहों के यदि संभव हो सके तो उस समुद्रमंथन के नवनीत से अनेकों लाभ उठाए जा सकते हैं। इस प्रकार ज्योतिर्विज्ञान पर समग्र शोध के साथ कितनी ही उपयोगी संभावनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इससे मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत अनेकानेक विभीषिकाओं के पीछे विद्यमान अदृश्य कारणों को ढूँढ़ने व उनके निवारण करने में सहयोग मिलेगा। साथ ही दैवी चैतन्य प्रवाह से अनुकूल लाभ पा सकना भी संभव हो सकेगा।

❐

# परोक्ष की महत्ता एवं वातावरण संशोधन की अनिवार्यता

यह जगत दो हिस्सों में बँटा हुआ है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। दृश्य पदार्थों के भीतर एक प्रेरक शक्ति काम करती है जिसे आँखों से नहीं देखा जाता, उसकी क्षमता एवं गति को देखकर अनुमान लगाया जाता है कि प्रकृति के अंतराल में शब्द, ताप और प्रकाश की तरंगें काम करती हैं उन्हें परोक्ष ही कहा जा सकता है। शरीर सारे काम करता है, पर उसके भीतर चेतना की परोक्ष प्राणशक्ति काम करती है। भूमंडल के संबंध में भी यही बात है। वह जल, थल और नभ के तीन भागों में विभक्त है किंतु उसका थोड़ा सा भाग ही दृष्टिगोचर होता है। भू-गर्भ में क्या हलचलें चल रही हैं, समुद्र तल में क्या हो रहा है, आकाश में कितना पदार्थ वायुभूत होकर उड़ रहा है ? इसकी जानकारी सामान्य बुद्धि या साधनों से प्राप्त नहीं होती, वह सभी एक प्रकार से परोक्ष या अदृश्य है।

प्रत्यक्ष के संबंध में ही हमें हलकी-फुलकी जानकारी होती है। इतने पर भी प्रत्यक्ष की तुलना में परोक्ष की क्षमता असंख्य गुनी है। एक चुटकी धूल का कोई महत्त्व नहीं किंतु एक परमाणु की परोक्ष शक्ति का विस्फोट गजब ढा देता है। समुद्र के खारे जल में ज्वार-भाटे मात्र उठते हैं पर इसे बहुत कम लोग जानते हैं कि धरातल के कोने-कोने में जल पहुँचाने के लिए उसकी अदृश्य प्रकृति एवं हलचल ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही बात आकाश के संबंध में भी है। वह पोला, खाली दृष्टिगोचर होता है किंतु पवन, पर्जन्य, प्राण जैसे अति महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रचुर मात्रा में उसी में भरे पड़े हैं। यदि उनका लाभ प्राणियों को न मिले तो किसी का भी जीवन शकट आगे न बढ़े।

चर्चा परोक्ष जगत की हो रही है। प्रत्येक प्रयोजन के लिए यों हमें प्रत्यक्ष से ही पाला पड़ता है और उसी को सब कुछ मानने तथा बढ़ाने-बदलने का अभ्यास रहता है फिर भी विचारशील यह भी भूलते नहीं कि परोक्ष की सत्ता असाधारण है और उसकी उपेक्षा करके खिलौने से खेलने की तरह मात्र छोटे बच्चों जैसी स्थिति हमारी बनी रहती है। एक अविकसित वनवासी मात्र घास-पात की संपदा पर ही निर्भर रहता है किंतु एक वैज्ञानिक प्रकृति पर आधिपत्य जमाता और असीम शक्ति का अधिष्ठाता बनता है। इसे परोक्ष सामर्थ्य की जानकारी एवं उपलब्धि का चमत्कार ही कह सकते हैं।

यहाँ चर्चा अदृश्य जगत की हो रही है। धरातल के पदार्थों, प्राणियों की हलचलों, संपदाओं, सुविधाओं को हम देखते हैं। उस क्षेत्र की प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में बदलने के लिए प्रयत्न भी करते हैं पर यह भूल जाते हैं कि प्रत्यक्ष के पीछे परोक्ष कारण भी महत्त्वपूर्ण भूमिका संपन्न कर रहे होते हैं और उन्हें समझने एवं निपटने के लिए भी कुछ किया जाना चाहिए। इस भूल का परिणाम है कि प्रयत्न करने पर भी समस्याएँ सुलझने में नहीं आतीं और श्रम निरर्थक चला जाता है। थकान, निराशा और खीझ ही पल्ले पड़ती है। हमें गहराई में उतरने की आदत डालनी चाहिए और समझना चाहिए कि मोती बटोरने के लिए गहरी डुबकी लगाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। किनारे पर भटकते रहने से सीप और घोंघों के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ सकता।

रोग प्रत्यक्ष है और औषधि भी। दोनों आपस में सुलझते-समझते भी रहते हैं। एकदूसरे को चुनौती चिरकाल से देते आ रहे हैं किंतु औषधियाँ हारती और बीमारी जीतती चली आ रही है। यह क्रम तब तक चलता ही रहेगा जब तक कि असंयम से शक्तियों के अपव्यय और विषाक्तता के उद्‌भव अदृश्य का कारण न समझा जाए और उसके निवारण के लिए चटोरेपन की आदत का परिमार्जन न किया

जाए। यह बात अर्थसंकट, मानसिक तनाव, परिवार विग्रह, समाज विक्षोभ जैसी समस्याओं के संबंध में भी लागू होती है।

परोक्ष जगत की परिधि में मानवी आस्था को महत्त्व तो दिया जा सकता है। फिर भी वह समग्र नहीं है। दृश्य जगत की पीठ पर एक अदृश्य जगत भी है और उसमें चल रही हलचलों एवं गतिविधियों से प्रत्यक्ष जगत पूरी तरह प्रभावित होता है। देखना यह भी है कि अदृश्य जगत में कहीं अवांछनीय तत्त्व तो नहीं घुस पड़े हैं और उनके प्रभाव से प्रत्यक्ष जगत का वातावरण तो विषाक्त नहीं हो रहा है।

ऋतुओं के प्रभाव को सरदी, गरमी, नमी के रूप में अनुभव किया जाता है। किंतु वस्तुतः वे सूर्य और पृथ्वी के परिभ्रमण से उत्पन्न होने वाली परिणतियाँ भर हैं। इसे समझे बिना ऋतु परिवर्तन के रहस्य से अपरिचित ही बने रहना पड़ता है। अंतरिक्ष से इतना कुछ बरसता है जिसे जल और थल की संयुक्त उपलब्धियों की तुलना में कहीं अधिक कहा जा सके। अदृश्य की शक्ति पर कभी तथाकथित प्रत्यक्षवादी अविश्वास करते थे पर बढ़ते हुए विज्ञान का समूचा आधार ही अप्रत्यक्ष को समझने और हस्तगत करने में केंद्रीभूत हो रहा है।

उथल-पुथल इन दिनों न केवल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में हो रही है वरन समाज व्यवस्थाएँ भी बदल रही हैं, लोगों की आकांक्षाएँ और आदतें भी। मनःस्थिति में अनेक कारणों से उलट-पुलट हुई है। फलतः उसकी प्रतिक्रिया और परिस्थितियों में भी चकित कर देने वाला परिवर्तन हुआ है।

प्रकृति क्षेत्र एवं धरती का वातावरण भी इससे अछूता नहीं रहा है। मनुष्य का भविष्य अधर में झूल रहा है। भविष्य की संभावना चौराहे पर खड़ी है। वह उत्कर्ष या विनाश की किसी भी दिशा में कदम बढ़ा सकती है। यह बात पृथ्वी के संबंध में भी लागू होती है। वह ऐसे संधिकाल में होकर गुजर रही है जिसमें अपने इस धरातल को विषम विपत्ति में भी फँसना पड़ सकता है।

अंतर्ग्रहीय परिस्थितियों, हलचलों तथा परिवर्तनों का अध्ययन करने वाले खगोलशास्त्रियों तथा ज्योतिर्विदों का मत है कि विगत कुछ दशकों से अंतरिक्ष जगत में असंतुलन बढ़ता जा रहा है, जिसकी प्रतिक्रियाएँ अनेक प्रकार से प्रकट हो रही हैं। यह स्थिति यथावत बनी रही तो अगले दिनों प्राकृतिक विपदाओं, प्रकोपों तथा भयंकर विक्षोभों की महाविभीषिका प्रस्तुत हो सकती है। संभव है कि उसकी चपेट में समस्त संसार को आना पड़े तथा अपना अस्तित्व गँवाना पड़े। उस स्थिति के स्मरण मात्र से रोमांच हो उठता है।

भू-वैज्ञानिकों का मत है कि पृथ्वी के चुंबकत्व में परिवर्तन से संसार में ऐतिहासिक उलट-पुलट हुए हैं। असंभव जान पड़ते हुए भी जब उन्हें विदित हुआ कि पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी चुंबकीय ध्रुव भी आपस में बदलते रहते हैं तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कितनी ही बार उत्तरी चुंबकीय ध्रुव दक्षिणी चुंबकीय ध्रुव में तथा दक्षिणी चुंबकीय ध्रुव उत्तरी में परिवर्तित होता रहा है, उनके साथ कितनी ही ऐतिहासिक घटनाएँ भी घटी हैं। शोध करने वाले विशेषज्ञों का मत है कि २५ हजार वर्ष पहले से आज की भू-चुंबकत्व तीव्रता ५० प्रतिशत कम है। कम होने की रफ्तार बनी रही तो अगली कुछ सदियों में महाप्रलय का सामना करना पड़ सकता है।

न्यूयार्क स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रो. रिचर्ड यूफेन का विश्वास है कि ध्रुव परिवर्तन के समय चुंबकीय बल क्षेत्र इतना कम हो जाता है कि उस समय अंतरिक्ष में स्थित वाल ऐलेन बेल्ट्स में सुरक्षा नहीं हो सकती। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का गोलार्द्ध अंतरिक्ष में बहुत दूर तक फैला हुआ है। यह चुंबकीय क्षेत्र ब्रह्मांडीय घातक किरणों को परावर्तित कर देता है। उस समय जीवधारी सौर आँधियों तथा ब्रह्मांडीय किरणों की दशा पर निर्भर रहते हैं। ध्रुव परिवर्तन से जलवायु व मौसम में भी भयंकर परिवर्तन हो जाते हैं। उसकी चरम परिणति हिमयुगों जैसे संकटों के रूप में भी हो सकती है। भूगर्भशास्त्रियों ने अपने शोध

निष्कर्षों में पाया है कि विगत कुछ दशकों से भू-चुंबकत्व की तीव्रता में लगातार गिरावट आ रही है। ऐसा कहा जाने लगा है कि आगामी २०० वर्षों में चुंबकीय क्षेत्र पूरी तरह समाप्त भी हो सकता है जिससे प्रलय अथवा महाप्रलय जैसे संकट भी आ खड़े हो सकते हैं।

ध्रुव क्षेत्र के विशेषज्ञ एच. एन. ब्राउन का अनुसंधान है कि इन दिनों दक्षिणी ध्रुव पर बरफ का भार निरंतर बढ़ रहा है। यह ऐसे ही बढ़ता रहा तो कुछ ही समय में पृथ्वी की धुरी बदल जाएगी और कहीं से कहीं जा पहुँचेगी। वर्तमान धुरी सात हजार वर्ष पहले बनी थी। अब हिमभार में असंतुलन उत्पन्न होने के कारण धुरी फिर परिवर्तित हो सकती है। चार्ल्स हैपवुड ने भी इस मत का समर्थन किया है। ध्रुव स्थान बदलते हैं तो उसके कारण धरती की क्रम व्यवस्था में भारी परिवर्तन होता है। अब तक तीन बार ऐसा हो चुका है। इन दिनों ध्रुवों के खिसकने की गति में तेजी आई है। स्थिति फिर ऐसी हो सकती है जिसका प्रभाव पृथ्वी की धुरी बदलने के रूप में सामने आए और उसके फलस्वरूप भारी उथल-पुथल मचे।

धुरी में राई रत्ती हेर-फेर होने पर भयानक भूकंपों जैसी स्थिति बनती है। जिन्हें भूकंपों का इतिहास विदित है, वे जानते हैं कि इस आधार पर पिछले दिनों कैसे विचित्र दृश्य उपस्थित हुए हैं? चिली भूकंप ने समुद्रतल १००० फुट ऊँचा उठा दिया था। सन् १९५० में हिमालय क्षेत्र में जो भूकंप आया था उसमें चोटियाँ १०० फुट तक ऊँची हो गई थीं। पृथ्वी का संतुलन बनाए रहने के लिए हिमालय की चोटियों को जिस सीमा में रहना चाहिए उससे वे ६०० फुट अधिक ऊँची हो गई हैं। यदि भूकंपों ने उन्हें और भी ऊँचा उठाया तो पृथ्वी का संतुलन डगमगा सकता है और महाद्वीपों को स्थान परिवर्तन करना पड़ सकता है। ऐसे अवसरों पर खंड प्रलय जैसे दृश्य उपस्थित होते हैं।

वर्ष १९८२-८३ में जितनी सरदी पड़ी है उतनी पिछले सौ वर्षों में कभी भी नहीं पड़ी। संभावनाएँ हैं कि ऐसी अनियमित अव्यवस्थाओं का दौर आगे भी चलता रहेगा और मौसम अपने सामान्य विधि-व्यवस्था का व्यतिक्रमण करके उछल-कूद की उलट-पुलट की नीति अपनाता रहेगा।

इसका कारण खोजने वालों ने कई प्रकार के अनुमान लगाए और कारणों का पर्यवेक्षण करते हुए कई कतिपय निष्कर्ष निकाले हैं। कैलीफोर्निया जेट प्रोपल्सन लेबोरेटरी के मौसम विशेषज्ञ रिचर्ड विलसन का अभिमत है कि सूर्य कलंकों की वर्तमान स्थिति इसके लिए जिम्मेदार है। सन् १९७९ से इस संदर्भ में एक विसंगति क्रम चला है और वह १९८६ तक इसी प्रकार बेतुके ढंग से चलता रहेगा। इस कारण सूर्य की गरमी प्राय: एक प्रतिशत धरती पर कम आई और उस कारण सरदी बढ़ी है।

पिछले दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व भी ऐसा हो चुका है। सन् १६४५ से १७१५ तक भी इसी कारण यूरोप और अमेरिका में भयानक ठंढ पड़ी थी और उन दिनों उसे मिनी हिमयुग कहा जाने लगा था। बिगड़ा संतुलन उस समय तो सध गया था पर जब भूत ने घर देख लिया तो फिर कभी भी छप्पर से कूदकर आँगन में आ धमक सकता है।

सन् १९८२ के मार्च, अप्रैल महीनों में मैक्सिको का अलचिनोन ज्वालामुखी फटा था। इसका मलवा असाधारण था। वह आसमान में ३० किलोमीटर ऊँचा उछल गया। इतनी ऊँचाई पर चलने वाली हवाओं ने उसे पकड़ लिया और उत्तरी गोलार्द्ध के एक बड़े भाग पर उस धूलि को बिखेर दिया। उससे धूप के पृथ्वी तक आने में रुकावट उत्पन्न हुई। उस कमी के कारण ठंढ का अनुपात बढ़ गया। माउंटेन न्यू के नासा अनुसंधान केंद्र के विज्ञानी ब्रायन ट्रन का कथन है कि यह प्रभाव अभी देर तक बना रहेगा।

ठीक ऐसा ही घटनाक्रम अब से १५० वर्ष पूर्व और भी घटित हो चुका है। सन् १८१६ में यूरोप में ठंढे मौसम के कारण फसल को पाला मार गया था और उत्तर-पूर्व अमेरिका में जून से अगस्त तक बरफ गिरी थी जबकि उन दिनों उस क्षेत्र में गरमी पड़ा करती है। विशेषज्ञों के अनुसार इसका कारण उन दिनों इंडोनेशिया के तंवोरा ज्वालामुखी से हुआ भयंकर विस्फोट था। उस शताब्दी का यह अपने ढंग का अनोखा विस्फोट था। उससे भी ऐसी ही धूलि उछाली थी। फलतः सूर्योदय और सूर्यास्त के समय आसमान लाल दीखता था। चंद्रमा पीले के स्थान पर नीला दीखने लगा था।

अमेरिका की नेशनल ऐकेडेमी ऑफ साइंसेज ने इस बदलते मौसम का एक और कारण बताया है। उसने एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उसके विशेषज्ञों का कथन है कि जिस प्रकार पृथ्वी और सूर्य के परिक्रमा चक्र में दूरी और समीपता के कारण सरदी-गरमी का मौसम बदलता है, ठीक उसी प्रकार अपना सूर्य भी महासूर्य के इर्द-गिर्द परिक्रमा करता है उसकी कक्षा भी पृथ्वी जैसी चपटी है। इस कारण इसी में अंतर पड़ता है। इसका सौरमंडल के ग्रहों पर प्रभाव पड़ता है। पिछले ५००० वर्षों में पृथ्वी समेत सौरमंडल अंतर्ग्रही परिभ्रमण पथ की उष्णता परिधि में रह रहा था। अब वह सरदी के दौर में प्रवेश कर रहा है फलतः ठंढक बढ़ रही है।

इन दिनों सूर्य की क्रियाशीलता अधिकतम है। इन्हीं दिनों पृथ्वी के वातावरण में धूमकेतुओं का प्रवेश हो रहा है। इन परिस्थितियों का धरातल पर मनुष्य आदि प्राणियों पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। खगोलविद् फ्रेडहाइल ने पुरातन अनुसंधानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जब कभी ऐसी परिस्थितियाँ आई हैं, तब महामारियाँ फैली हैं। धूमकेतुओं की समीपता से पृथ्वी के वातावरण में भारी परिवर्तन होता है।

प्रकाश की लंबी रेखा बुहारी की तरह पूँछ वाला यह तारा कभी आकाश में दिखाई दे जाता है तो भारतवर्ष ही नहीं सारे विश्व में

बेचैनी फैल जाती है। यह तारा जिसे धूमकेतु या पुच्छल तारा कहते हैं, अशुभ और अनिष्ट का सूचक समझा जाता है। जब भी यह निकलता है, लोग युद्ध, अकाल, महामारी जैसी आशंकाओं से भयभीत हो उठते हैं। पुच्छल तारा मानव जाति के लिए व्याधि और विनाश का प्रतीक माना जाता है।

यह पुच्छल तारा साधारण मनुष्यों के लिए ही भय और आश्चर्य का विषय नहीं रहा, वैज्ञानिकों ने भी उसे बड़े कुतूहल की दृष्टि से देखा। अनेक वैज्ञानिक उसकी विशद जानकारी करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। प्रसिद्ध खगोलविद् न्यूटन, जिनका मस्तिष्क पिंडीय जगत में सदैव भ्रमण किया करता था—गुरुत्वाकर्षण जैसा सिद्धांत उन्होंने ही बनाया था—ने धूमकेतुओं के अनेक आश्चर्यों की खोज की। टाइकोब्राहे और डॉ. हेली ने धूमकेतु ताराओं का विशेष अध्ययन किया और कहा, "प्रकृति के अनेक रहस्यपूर्ण करतबों में से एक यह धूमकेतु भी है। इसकी आकृति, प्रकृति, गुण, कर्म और निवास-विश्राम के ऊपर वैज्ञानिकों ने काफी कार्य किया है एवं अलग-अलग रूपों में अपने निष्कर्ष दिए हैं।"

पुच्छल तारों को उनकी शानदार पूँछ के कारण धूमकेतु कहते हैं। जब धूमकेतु सूर्य के निकट पहुँचता है, तब उनकी पूँछ प्रकट होती है। प्राचीनकाल में वैज्ञानिक धूमकेतुओं को ध्रुवीय प्रकाश, बादल और बिजली की तरह वायुमंडल की घटनाएँ समझते थे। अधिकांश वैज्ञानिक इसे हानिकारक वाष्प का बादल मान बैठे थे।

समय-समय पर वैज्ञानिक जैसे डेनिश, केपलर आदि इसका अध्ययन करते रहे, किंतु पूर्णतया अपने अभियान में सफल नहीं रहे। आकाश में धूमकेतुओं के प्रकट होने की पुरानी सूची का अध्ययन करते हुए वैज्ञानिक एडमंड हैली ने सबसे प्रथम समझा कि धूमकेतु सौरमंडल के स्थायी निवासी हैं। उन्होंने कहा कि धूमकेतुओं के प्रकट होने की अवधि लगभग एक समान अर्थात ७६ वर्ष है। अस्तु, उन्हीं के

सम्मान में इसका नाम हैली दे दिया गया। हैली का धूमकेतु ज्योतिर्विज्ञान से ज्ञात इतिहास में सन् १७५८, १८३४ तथा १९१० में दिखाई पड़ा था।

बंगलौर में स्थित भारतीय खगोल भौतिकी संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. जे. सी. भट्टाचार्य के अनुसार संस्थान के केंद्र कैवलट में ३० इंच का एक दूरवीक्षण यंत्र लगाया जाएगा। २४ इंच का मिडट टेलिस्कोप, स्मिडट टेलिस्कोप आदि यंत्रों द्वारा स्पक्ट्रोस्कोपिक और पैस्वेक्ट्रो-कोटोमिटरिक प्रणाली का प्रयोग कर प्रक्षेणात्मक अध्ययन किया जाएगा। कोड़ाईकेनाल वेधशाला में उच्च क्षमता वाले वर्ण क्रमाभापी का उपयोग कर धूमकेतु के सिर का अध्ययन किया जाएगा। नियमित फोटोग्राफी लेकर धूमकेतु के दैनिक परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सकेगा। यह सन् १९८४ मई माह से ही खगोलविदों की प्रेक्षण सीमा में आ गया है।

धूमकेतु की बाह्य रेखाएँ स्पष्ट न होकर धुँधली होती हैं। उसके भीतर ठोस नाभिक होता है तथा नाभिक गैसों के आवरण द्वारा घिरा रहता है। धूमकेतु का सिर यही गैसयुक्त आवरण होता है। धूमकेतु का ठोस भाग अर्थात नाभिक अवाष्पशील पदार्थ तथा हिमखंडों से विनिर्मित होता है। इन हिमखंडों में जमी हुई गैसें जैसे कार्बन सायनाइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रोजन तथा अन्य विषैले पदार्थ धूम्रावस्था में रहते हैं।

धूमकेतुओं की उत्पत्ति के संबंध में अभी दुनिया के वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं वैज्ञानिक अरस्तू का कहना है कि जो गैसीय पदार्थ पृथ्वी से निकलकर समस्त वायुमंडल में फैल जाता है, वही धूमकेतु की आकृति धारण कर लेता है। एक और तथ्य की जानकारी वैज्ञानिकों को हुई है कि धूमकेतु स्वयं में कोई प्रकाश नहीं रखता अपितु चंद्रमा की भाँति सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित

होता है। इन धूमकेतुओं के बनने के और भी अनेकानेक कारण पाए गए हैं।

सर्वप्रथम सन् १५७७ में डेनमार्क के नामी खगोलज्ञ टाइकोब्राहे ने बताया कि धूमकेतु करोड़ों मील के विस्तार से सौरमंडल में प्रवेश करते हैं। एक और विशेषज्ञ आर.ए. लिटलटन का मत है कि जब सूर्य अंतर ताराकीय धूलि तथा गैस में से निकलता है तो उनके संघनन से धूमकेतु का निर्माण होने लगता है।

श्री जे.एच. ऊर्ट जो हालैंड की लेइडन वेधशाला में कार्यरत थे, का अभिमत रहा है कि किसी समय मंगल और बृहस्पति के परिक्रमा मार्ग में एक ग्रह था। किन्हीं बाह्य शक्तियों के दबाव के कारण तितर-बितर हो गया। उसके पाँच प्रतिशत टुकड़े सौरमंडल की ओर चलते बने। इन्हीं ने धूमकेतु का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। वर्तमान में धूमकेतुओं की संख्या १०१४ (दस नील) की आँकी गई है।

धूमकेतुओं के उदय का अभिप्राय होता है—किसी महान घटना का पूर्वाभास। घटनाएँ शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। कुछ धूमकेतु तो वास्तव में शुभ घटनाओं के ही प्रतीक चिह्न के रूप में चमकते हैं। 'बेतुलहम का सितारा' ईसा मसीह के जन्म के समय प्रकट हुआ था। इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर ने 'जूलियस सीजर' नामक नाटक में धूमकेतुओं की चर्चा करते हुए बताया है कि ये किसी भिखारी की मृत्यु पर नहीं वरन महान सम्राट की मृत्यु पर ही आकाश में चमकते हैं। वैज्ञानिकों की दृष्टि में तो इनके कुप्रभाव ही अधिक दृष्टिगोचर हुए हैं।

डेनियल डिफो की 'जनरल ऑफ प्लग इयर' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें वर्ष १९६५-६६ में लंदन में प्लेग और आग लगने की घटना का मुख्य कारण पुच्छलतारों के चमकने को ही माना है। ऐसी अनेकों दुर्घटनाओं का विस्तृत विवरण पुस्तक में छपा है जो धूमकेतुओं के प्रकटीकरण के कारण ही हुई।

यों धूमकेतु कोई ऐसा दानव नहीं, जो मनुष्यों की तरह मारकाट मचाता हो। यह भी गैस, खनिज चट्टानों तथा हिमकणों से बना विचित्र प्रकार का तारा ही है। सबसे आश्चर्यजनक इसकी पूँछ है, जिसकी लंबाई लाखों करोड़ों मील तक नापी गई है। सन् १८११ में धूमकेतु दिखाई दिया था, उसकी पूँछ १० करोड़ मील लंबी थी जबकि सन् १८४३ में जो धूमकेतु दिखाई दिया था खगोलशास्त्रियों के अनुसार उसकी पूँछ की लंबाई १५ करोड़ मील से भी बड़ी थी।

कई धूमकेतु कई पूँछ वाले भी होते हैं। आकाश में इतनी दूर तक फैली हुई पूँछ को बीच से फाड़कर पृथ्वी और दूसरे ग्रह अपनी परिक्रमाएँ करते रहते हैं। ऐसा अनुमान है कि पूँछ में पाई जाने वाली गैसें अदृश्य रूप से लोगों के मस्तिष्क और शरीर में ऐसी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं जिनसे शरीर और सामाजिक जीवन में दूषित तत्त्वों की अभिवृद्धि होती हो और इसी से यह अनिष्टकारक समझे जाते हों, पर ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता जो बलात मनुष्य की इच्छाशक्ति को मोड़ सकता हो या विध्वंस उपस्थित कर सकता हो। इसकी आकृति ही भयंकर होती है। भार तो बहुत ही कम होता है।

खगोलशास्त्रियों ने अनुमान लगाकर बताया है कि एक कमरे की एक घन इंच हवा में जितना पदार्थ होता है धूमकेतु की पूँछ में उतना पदार्थ एक घन मील में होता है। चमक तो गैसों की होती है। इसका सिर भी उतने भार का नहीं होता, जितना दिखाई पड़ता है। यह छोटी-छोटी गोली के आकार जैसे धूलकणों से बना होता है और यह टुकड़े भी एक घन मील में कोई सौ-पचास की संख्या में होते हैं।

इतिहास में हर धूमकेतु के प्रकट होने की कहानी कुछ विपत्तियों के अग्रदूत के रूप में लिखी है। जब-जब वे आए हैं कोई न कोई मानवता के लिए संकट ही लेकर आए हैं। सन् १०६६ में रूस के इतिहास में आए धूमकेतु के बारे में इस प्रकार लिखा है—

"इस समय पश्चिम में एक संकेत हुआ। वहाँ एक बहुत बड़ा तारा था। उसकी किरणें अधिक थीं, सूर्यास्त होने के बाद वह सायं-काल को ऊपर उठता था और सात दिन तक नजर आता रहा। इसके बाद भीतरी युद्ध होते हुए और रूसी भूमिका पर दुश्मनों के कबीलों का आक्रमण हुआ। खूनी तारा जब भी प्रकट होता है, सदा ही रक्तपात का अग्रदूत होता है।"

कुछ शताब्दियों बाद १८११ ई. में पुनः धूमकेतु दीख पड़ा, तब १८१२ में नेपोलियन बोनापार्ट अपनी सेना लेकर रूस पर चढ़ आया। फलतः युद्ध में मास्को शहर जलकर खाक हो गया।

धूमकेतु केवल सूर्य की संतान हों, ऐसी बात नहीं। नवग्रहों में कई के पास यह संतानें हैं। शनि धूमकेतुओं की संख्या ६, नेप्च्यून की ८ है। इसी प्रकार बृहस्पति के घर में अनुमानतः १८ पुच्छल तारे चक्कर काटते रहते हैं।

कभी-कभी दिखाई देने वाले इन धूमकेतुओं की संख्या कम नहीं हजारों की संख्या में है तथा सूर्य के आस-पास और सौरमंडल के बाहर भी चक्कर काटते रहते हैं। हमें जो धूमकेतु दिखाई देते हैं वह सब शंकर की जटाओं से एकाएक प्रादुर्भूत पुत्रों की तरह सूर्य संतानें हैं। वह किस तरह पैदा हो जाते हैं, इस संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं है, पर अब सूर्य के ऐसे ३२ प्रकाश पुत्रों का पता चला है। आज्ञाकारी पुत्र की तरह यह भी सूर्य की ही परिक्रमा लंबे वृत्त में किया करते हैं। हेली, फाये, ओल्वेरस, ब्रोरसेन, इन्के टूटल आदि धूमकेतु ३ वर्ष से लेकर १०० वर्ष की अवधि में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। कुछ धूमकेतु १५० वर्ष तक में सूर्य की परिक्रमा पूरी करते हैं, जब कभी ये पृथ्वी के वायुमंडल में आ जाते हैं हमें दिखाई देने लगते हैं। हेली एक धूमकेतु जो सरएडमंड हैली के नाम से इस रूप में प्रसिद्ध है, जो हर ७६ वर्ष बाद आता रहता है। इससे पहले वह १९१० में आया था तब प्रथम विश्वयुद्ध की तैयारियाँ हुई थीं। इसी से लोग

अनुमान लगाते हैं कि अगले दिनों तृतीय विश्वयुद्ध की तैयारियाँ हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। संभव है तब मानव जाति पर बड़े संकट आएँ, पर यदि ऐसा हुआ ही तो आगे का संसार एक नए अध्याय से ही प्रारंभ होगा, युगसंधि के इस संक्रमण काल में घट रहे कुछ घटनाक्रमों की जो झाँकी अभी से नजर आ रही है, उसे देखते हुए भी वैज्ञानिकों का यह अनुमान खगोलज्ञों की परिकल्पना भर नहीं, सही प्रतीत होने लगा है। अब तृतीय विश्वयुद्ध के आसार नजर आ रहे हैं।

सन् १८४३ में जो धूमकेतु दिखाई दिया था, वह सूर्य के ४९ हजार मील पास तक चला गया था। इससे पहले ३ करोड़ मील की दूरी तक ही वह आ पाया था। धूमकेतु जब सूर्य के पास आता है तभी उसकी पूँछ चमकती और लंबी होती दिखाई देती है। सूर्य का प्रकाश पड़ने के कारण ही ऐसा होता है। जैसे-जैसे वह दूर हटता है पूँछ छोटी होती हुई बाजीगर के खेल की तरह सिर में ही लुप्त हो जाती है। धूमकेतु जब सूर्य के नजदीक आते हैं, तब सूर्य के प्रतिकर्षण बल द्वारा पीछे ढकेली गैसों के उड़ने से दुम का निर्माण होता है। जैसे-जैसे धूमकेतु सूर्य के नजदीक आता-जाता है, उसकी पूँछ की लंबाई बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि एक धूमकेतु की दुम की लंबाई ९० करोड़ किलोमीटर लंबी तक आँकी गई है।

जिसके साथ धुएँ की पताका जुड़ी हो संस्कृत भाषा में उसे ही धूमकेतु के नाम से जाना जाता है। अँगरेजी का 'कॉमेट' शब्द यूनानी भाषा के 'कोमेटेस' के नाम से बना है। इसका अर्थ होता है—लंबे बालों वाला तारा।

धूमकेतुओं के प्रकटीकरण की चर्चा बहुत पुरानी है। विभिन्न प्रकार के धूमकेतुओं की खोज का माहौल सर्वत्र बना हुआ है। हैम्बर्ग (प. जर्मनी) की खगोलीय वेधशाला में कार्यरत चेकोस्लोवाकिया के डॉ. लूबोस कोहौटेक ने एक ऐसे धूमकेतु की खोज की है जिसे २०वीं

शताब्दी में अब तक चमके धूमकेतुओं से अधिक प्रकाशवान समझा गया है। चूँकि १८ मार्च, १९७३ को डॉ. कोहौटेक ने इस धूमकेतु को विशालकाय दूरबीनों की सहायता से ढूँढ़ा इसलिए इसका नाम भी 'कोहौटेक' ही रखा गया है। पृथ्वी से इसकी निकटतम दूरी साढ़े तीन करोड़ मील तथा गति ५० मील प्रति सेकंड की थी।

अब तक दिखने वाले धूमकेतुओं में 'कोहौटेक' पहला धूमकेतु है जिसे पृथ्वी के बाहर से भी देख सकना संभव हुआ है। कोहौटेक के प्रभावों के अध्ययन हेतु विश्व के अधिकांश राष्ट्रों में प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई हैं। अमेरिका में राष्ट्रीय वैमानिक नभीय प्रशासन (नासा) के मार्गदर्शन में 'ऑपरेशन कोहौटेक' को आज क्रियाशील होते स्पष्ट देखा जा सकता है।

अभी हाल ही में एक विशालकाय पुच्छल तारे का वैज्ञानिकों को पता चला है। इसका नाम इरास अराफी अलकोक है। यह नाम उन दो प्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिकों के नाम पर रखा गया, जिनने इसकी खोज की। धीरे-धीरे यह धूमकेतु पृथ्वी के और निकट पहुँचता जा रहा है। कुछ समय पहले तक यह पृथ्वी से ५० लाख किलोमीटर दूर था। वैज्ञानिकों के अनुसार पिछले २०० वर्षों में कोई भी पुच्छलतारा पृथ्वी के इतना निकट नहीं आया था। यह उसके अतिरिक्त है जिसके लिए दुनिया अभी से भयभीत है एवं 'बिवेयर, हैली इज कमिंग' नाम से जिस पर लिखी किताबें धड़ल्ले से बिक रही हैं।

यह एक आश्चर्य की बात है कि जब भी कभी आकाश में धूमकेतु तारे उदित होते हैं तो मनुष्य जाति किसी भयंकर विस्फोट की आशंका से भयभीत हो उठती है। पर हम यह नहीं जानते कि सूर्य के भंडार में ऐसे क्षुद्रग्रह जिन्हें 'एस्टरायड' कहते हैं असंख्य मात्रा में भरे हैं, वे भले ही छोटी-छोटी आँखों से दिखाई न देते हों पर दूरबीनों ने उनकी उपस्थिति को असंदिग्ध सिद्ध कर दिया है और

इस तरह एक प्रलय का खतरा हर क्षण हमारे मस्तिष्क पर मँडराया करता है।

पृथ्वी के इर्द-गिर्द एक के बाद एक कवचों की परतें लिपटी हुई हैं। उनसे टकराकर अंतरिक्षीय उल्का पिंडों से हो सकने वाली क्षति बची रहती है। उल्का पिंड धरती पर आक्रमण करते हैं। वायुमंडल में प्रवेश करते-करते जल-भुनकर राख होते रहते हैं। इतने पर भी यह नहीं समझ लेना चाहिए कि खतरा बिलकुल टल गया। ढाल इतनी मजबूत नहीं है जिसे कोई भी हथियार बेध न सके। पृथ्वी पर अंतरिक्षीय विघातक आक्रमण का खतरा बना रहता है। इतना ही नहीं इन दिनों तो उन आशंकाओं का अनुपात बढ़ता ही जा रहा है।

विशाल ब्रह्मांड में विद्यमान ग्रह-नक्षत्रों के विशाल समुदाय में अपनी पृथ्वी का आकार एक धूलिकण के समान है। अंतरिक्ष में कितने ही नए तारकों का उद्‌भव एवं पुरानों का समापन होता रहता है। इस जन्म-मरण की प्रक्रिया में कई बार बड़े टकराव ही निमित्त कारण होते हैं। पृथ्वी की आयु बीस करोड़ वर्ष मानी जाती है। यह ब्रह्मांड काल के आयुष्य को देखते हुए चुटकी बजाने जितनी स्वल्प है। फिर भी इसे सौभाग्य ही कहना चाहिए कि उसे किसी अंतरिक्षीय दुर्घटना का अब तक शिकार नहीं होना पड़ा। तथापि यह नहीं समझा जाना चाहिए कि खतरे की कोई आशंका नहीं है। वह सिर पर मँडराता ही रहता है। कई बार तो वह और भी अधिक सघन होता देखा गया है। अपने समय को ऐसी ही आशंकाओं से घिरा समझा जाए तो उसे अत्युक्ति नहीं कहा जाएगा।

अंतरिक्ष विज्ञानी बताते हैं कि कई हजार वर्ष पूर्व शुक्र और पृथ्वी की टक्कर होते-होते किसी प्रकार बच गई। दोनों के प्रभावक्षेत्र इतने समीप आ गए थे कि टकरा जाने जैसा माहौल बन गया था। विपत्ति तो टल गई पर पृथ्वी की धुरी २३ अंश एक ओर झुक गई और इससे मौसम में असाधारण परिवर्तन हुए।

अंतरिक्ष में आवारागर्दी करने वाली ये उल्काएँ अपनी दुस्साहसिकता के कारण स्वयं को तो क्षति पहुँचाती ही हैं, पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को भी उथल-पुथल से भर देती हैं। इन उद्दंड उल्काओं की आवारागर्दी की गाथाएँ दुनिया भर के पौराणिक साहित्य में रोचक ढंग से वर्णित हैं।

यूनान की पौराणिक गाथाओं में 'इकोरस' नाम के एक युवक की कथा है। यह सूर्य से मिलने की महत्त्वाकांक्षा रख, नकली पंख लगाकर चल पड़ा। पंख उसने मोम से चिपका लिए थे।

अधिक ऊँचे जाने पर उसके पंख को जोड़ने वाली मोम गरमी के कारण पिघल गई और पंख नीचे गिर पड़े, 'इकोरस' भी औंधे मुँह नीचे समुद्र में आ गिरा तथा मर गया।

पिछले दिनों इसी युवक की तरह का एक दुस्साहसी उल्का पिंड भी देखा गया। इसका नाम भी 'इकोरस' ही रखा गया। यह 'इकोरस' उल्कापिंड कभी सूर्य के अधिक निकट जा पहुँचा है। इतना कि बस थोड़ा और पास जाए तो भुरता ही बन जाए। कभी लगता है कि वह बुध से कभी मंगल और कभी शुक्र से अब टकराया, तब टकराया। सूर्य के अति निकट पहुँचकर वह आग का गोला ही बन जाता है तो कभी सूर्य से इतनी दूर जा पहुँचता है कि शीत की अति ही हो जाती है।

जून १९६८ में इस उद्दंड क्षुद्रग्रह की पृथ्वी के ध्रुव प्रदेश से टकराने की संभावना बढ़ गई थी। यदि खगोलशास्त्रियों की वह आशंका सत्य सिद्ध होती, तो पृथ्वी में भीषण हिम तूफान आते, समुद्र उफनकर दुनिया का थल भाग अपनी चपेट में ले लेता, साथ ही लाखों वर्ग मील भूमि में गहरा गड्ढा हो जाने की संभावना थी। जहाँ यह उफनता समुद्री जल भर जाता, वहाँ कुल मिलाकर करोड़ों मनुष्यों का सफाया हो जाता। सन् १९०८ में मात्र हजार फुट व्यास की एक उल्का साइबेरिया के जंगल में गिरी थी, तो वहाँ अणुबम विस्फोट जैसे हो गए थे।

इकोरस तो उस उल्का से हजारों गुना बड़ा है। अतः परिणाम का अनुमान किया जा सकता है।

सौभाग्यवश इकोरस पृथ्वी के समीप होकर गुजर गया और एक भीषण दुर्घटना टल गई। सौरमंडल में ऐसे अनेक क्षुद्रग्रह हिडालगो, इरोस, अलवर्ट, अतिंडा एयोर, सहसा टकराकर कभी भी धरती के जीवन में उथल-पुथल मचा सकते हैं।

आज से अड़तालीस वर्ष पूर्व १९३७ में एक बार ऐसा ही तहलका मचा था। तब इकोरस का ही एक दूसरा भाई हर्मेस अपनी आँखें लाल करके दौड़ा था। खगोलशास्त्रियों ने निश्चित आशंका व्यक्त की थी कि वह भी पृथ्वी से टकरा सकता है। यदि तब वह घटना घटित हो गई होती तो आज पृथ्वी की कुल आबादी एक और दस हजार के बीच होती। एक नए इतिहास की प्रस्तावना इन दिनों चल रही होती। पर बेचारा हर्मेस पृथ्वी से पाँच लाख मील पास तक ही आया और जब उसने देखा पृथ्वीवासी बहुत डर गए तो उसे भी दया आ गई और उसने अपना मार्ग बदल दिया। पृथ्वीवासियों ने संतोष की साँस ली। अभी इन उल्कापिंडों की आँख मिचौनी चल रही है। सन् १९८३ में इकोरस एक बार फिर लौटा था किंतु टकराने जैसी परिस्थिति नहीं बनी। परिधि का स्पर्श करते हुए दूसरी ओर चला गया। इसकी आँखमिचौनी समाप्त नहीं हुई है। कभी आ टकराया तो २० करोड़ मैगाटन के परमाणु बम फटने जैसा विस्फोट उत्पन्न करेगा और जहाँ कहीं टकराएगा, वहाँ का स्वरूप ही बदल देगा। सारी पृथ्वी उससे प्रभावित होगी।

इकोरस का साथी एक और उल्का पिंड है—तोरो। यह आकार में छोटा है तो भी ऐसा है कि टकराने पर कोई भयानक दुर्घटना खड़ी कर सके। यह पाँच किलोमीटर व्यास का है, तो भी तेजी से गिरने पर पृथ्वी की धुरी तक को हिला सकता है और उतने भर से जल, थल का

वर्तमान नक्शा बदल सकता है। मौसम चक्र में असाधारण परिवर्तन हो सकता है।

भूतकाल में ऐसी ८ उल्काएँ समय-समय पर पृथ्वी से टकराकर उसे भारी क्षति पहुँचा चुकी हैं। हडसन की खाड़ी के किनारे का प्रख्यात गोल गड्ढा, जर्मन में १७ मील चौड़ा राइन केसल का गड्ढा इन उल्काओं से उत्पन्न हो सकने वाली विभीषिकाओं का परिचय देते हैं। यदि ऐसी उल्काएँ ध्रुवीय क्षेत्र पर गिर पड़ें तो पृथ्वी का सत्यानाश ही हो जाएगा। ध्रुवों की सतह पिघल पड़ेगी और समुद्र में बाढ़ आने से धरती के अनेक भागों में जल प्रलय का दृश्य उपस्थित होगा। चंद्रमा पर वायुमंडल झीना है इसलिए वहाँ उल्काएँ आसानी से गिरती रहती हैं। अस्तु, उन्होंने सुंदर चंद्रमा को खाड़ खड्डों वाला बना दिया है।

यदि पृथ्वी सर्वनाश के लिए ही बनाई गई होगी तो विधाता ने इसे इतना सुंदर, प्रकृति के सौंदर्य से अभिपूरित, जीवधारियों से लदा ग्रह न बनाया होता। यहाँ भी जीवन न होता। इतनी उल्काएँ व क्षुद्र-ग्रह, धूमकेतु आते-जाते रहे हैं। इनके अंतर्ग्रही प्रभाव धरती पर अवश्य पड़ते हैं। ज्योतिर्विज्ञान की चिरपुरातन विधा में इन्हीं से आत्मरक्षा की व्यवस्था की चर्चा होती है। मनुष्य को डरने-घबराने के स्थान पर सुरक्षा के उपाय करना चाहिए।

पदार्थ विज्ञान के साथ अध्यात्म विज्ञान को जोड़ने से ही समग्र तत्त्वज्ञान का सृजन होता है। उसी समन्वय के आधार पर जो जानने योग्य है उसे जाना जा सकता है और जो पाने योग्य है उसे पाया जा सकता है। इन दिनों की विकट समस्याओं में यदि परोक्ष जगत की विकृतियों को समझने-सुधारने का प्रयत्न किया जाए तो उसे दूरदर्शी विवेकशीलता ही कहा जाएगा। फुन्सियाँ अच्छी न हो रही हों तो रक्त विकार खोजने तक दृष्टि दौड़नी चाहिए। मच्छरों को भगाते न बन रहा हो तो सड़ी कीचड़ के खोजने और हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

पतन और पराभव वस्तुतः भ्रांतियों और विकृतियों की परोक्ष गड़बड़ का ही प्रतिफल होता है।

जिनको परोक्ष पर, अदृश्य पर विश्वास कर सकने योग्य समझ मिल सकी है उन्हें वर्तमान की न सुलझने योग्य गुत्थियों के पीछे अदृश्य में संव्याप्त विषाक्तता खोजनी होगी। इसी का प्रभाव है कि लोकचिंतन में अवांछनीयता बढ़ रही है और प्रकृति-प्रकोपों का दौर चल पड़ा है। वर्षा होती है तो धरती पर हरी चादर बिछती है। जल-जंगल एक होते हैं। सरदी का पतझड़ और गरमी की जलन का सामना करते समय उसका कारण अदृश्य में ही खोजना पड़ता है। दृश्य के प्रत्यक्ष से निपटने की सामर्थ्य जब कुंठित हो चले तो परोक्ष की ओर दृष्टि डालनी चाहिए। रिसते नासूर के मूल में घुसे हुए काँटे को कुरेदना चाहिए। कठपुतली स्वयं कहाँ नाचती है? उनसे कुतूहल कराने में बाजीगर की उँगलियाँ ही चमत्कार दिखाती रहती हैं।

इन दिनों के प्रकृति-प्रकोप एवं पतन-पराभव, विनाश-विग्रह के पीछे अदृश्य जगत की स्थिति को समझने का प्रयत्न होना चाहिए। साथ ही उसे सुधारने-संतुलित करने का भी व्यक्ति का स्तर और सृष्टि का भविष्य जिस प्रकार चिंतनीय बनता जा रहा है, उसे महामारी प्रवाह की तरह किसी अदृश्य विषवमन का परिणाम समझा जा सकता है। अच्छा हो प्रत्यक्ष को ही सब कुछ न समझकर परोक्ष की ओर भी दृष्टि दौड़ाई जाए और उस क्षेत्र में संव्याप्त अशुभ से निपटने तथा शुभ का परिपोषण करने के लिए उपाय सोचे और प्रयास किए जाएँ। न सुलझने वाली गुत्थियों को सुलझाने के लिए हमारा ध्यान परोक्ष की ओर मुड़े और अदृश्य के संतुलन का प्रयास चले तो उसे यथार्थ का अवलंबन ही लेना होगा।

❐

# विपत्तियों का उद्‌भव अदृश्य जगत से

वर्तमान युग की समस्याओं के उत्पन्न होने के कारण बाहरी लगते हैं, परंतु उनके मूल कारण बहुत गहरे हैं। पेड़ जितना बड़ा होता है उसकी जड़ें उतनी ही गहरी भी होती हैं। इन जड़ों से ही पेड़ के तने, शाखा और पल्लवों को खुराक मिलती है। वृक्ष पर लगे फल-फूल बाहर वृक्ष के माथे पर लगे दीखते हैं लेकिन ये कहीं बाहर से आए या उतरे नहीं होते। वृक्ष का अस्तित्व, वैभव और विस्तार जड़ों के कारण ही बाहर बना फैला रहता है और जड़ों को आँखों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, क्योंकि वे जमीन के अंदर होती हैं।

भगवान कृष्ण ने गीता में इस जगत को ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाला वृक्ष कहा है। जिसका अर्थ जड़ें ऊपर और पेड़ शाखाएँ नीचे होती हैं। यह उक्ति विचित्र पहेली सी लगती है, पर विचारपूर्वक इसका विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होगा कि उक्ति यथार्थ है। बादल ऊपर बरसते और जमीन पर नमी तथा शीतलता बनाए रहते हैं। पृथ्वी पर दृश्यमान संपदा वास्तव में आकाश का ही अनुदान है। सृष्टि के आरंभ में धरती आग का जलता हुआ प्रचंड गोला था। उस पर आच्छादित रही गैसें मिलकर पानी बनीं और बरसीं। उसी से समुद्र बना तथा समुद्र का पानी भाप बनकर बादल बनने का सिलसिला चल पड़ा। पृथ्वी पर पाया जाने वाला यह जल ही प्रकारांतर से प्राणियों के जीवन का आधार है। वह मिलता तो धरती पर ही है पर वास्तव में वह सृष्टि के आरंभ से ही आकाश का वैभव था और अंत तक भी उसी का अनुदान बना रहेगा।

सूरज की संतुलित गरमी पहुँचने से पृथ्वी पर जीवन का विकास आरंभ हुआ। यह गरमी ऊपर सूरज से उतरती है और उसी से पृथ्वी

धधकती रहती है, छूने पर भी गरम लगती है। चूँकि पृथ्वी गरम लगती है अत: सामान्य बुद्धि गरमी और प्रकाश को पृथ्वी की संपदा कह सकती है लेकिन वास्तविकता यह है कि व्याप्त उष्मा और ऊर्जा का स्रोत सूर्य ही है। उसी के अनुदान से पृथ्वी पर वनस्पति के रूप में जीवन उगता और प्राणियों के रूप में चलता-फिरता दिखाई देता है। सूर्य किरणें यदि असंतुलित हो उठें तो यह धरती अग्निपिंड या शीतपिंड बनकर पूरी तरह निर्जीव स्थिति में जा पहुँचेगी।

पृथ्वी पर प्राप्त होने वाली अगणित प्रकार की संपदा, क्षमता और विशेषताएँ उसकी अपनी ही प्रतीत होती हैं लेकिन विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि यह सब दूसरे ग्रहों से मिला हआ अनुदान है जो ध्रुवों के चुंबकत्व से अर्जित और संग्रहीत किया जाता रहता है। यदि पृथ्वी को अंतर्ग्रही अनुदान न मिले होते तो वह अन्य निर्जीव ग्रहों की भाँति इस वैभव से शून्य और निस्तेज स्थिति में पड़ी रहती।

फसल उगाने और वनस्पति के रूप में खाद्य पदार्थों का उपयोग करने की प्रक्रिया धरती की कृपा से ही संपन्न की गई लगती है लेकिन सचाई कुछ और ही है। अन्न और जल से भी अधिक प्राणियों को जीवन निर्वाह के लिए वायु की आवश्यकता रहती है। अन्न और जल के बिना तो फिर भी कुछ समय तक जीवित रहा जा सकता है लेकिन हवा के बिना एक क्षण भी गुजारा नहीं। प्राणियों को खुराक के द्वारा जितना पोषण मिलता है उससे हजार गुना अधिक पोषण हवा से प्राप्त होता है। आँखों से हवा की आवश्यकता और महत्ता न दिखाई दे तो क्या हुआ, वस्तुस्थिति तो यथावत बनी ही रहती है।

पिंड ब्रह्मांड का छोटा रूप है और परमाणु के अंत:क्षेत्र में काम करने वाले घटकों के रूप में सौरमंडल की झाँकी देखी जा सकती है। ब्रह्मांड में भरी चेतना परब्रह्म कही जाती है, जीव उसी का छोटा घटक है। जीव और ब्रह्म के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान का क्रम जितना निर्बाध चलता रहता है उसी अनुपात से जीवधारी को समर्थ और शक्ति

संपन्न पाया जा सकता है। इसी शृंखला पर जीव का प्रगतिक्रम अवलंबित है। इसलिए जीव और ईश्वर के बीच आदान-प्रदान का द्वार खोल लेना, उस मार्ग के अवरोधों को हटा देना परम पुरुषार्थ माना गया है। यही कारण है कि इस दिशा में किए गए साधनात्मक प्रयासों को सर्वोच्च माना गया है। उद्योग, व्यवसाय, शिल्पकला, साहित्य, शोध आदि के प्रयास निस्संदेह महत्त्वपूर्ण हैं पर आत्मा और परमात्मा के मध्य प्रभावी विनियोग स्थापित करने के प्रयोगों को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाले अश्वथ का यही रहस्य है जिसे देखने, जानने वाले समझते और मानते थे तथा न देखने वाले अमान्य ठहराते हैं।

पृथ्वी की सतह पर अपार वैभव बिखरा है और उसकी परतों में अकूत संपदा बिखरी पड़ी है लेकिन अंतरिक्ष में संव्याप्त अदृश्य जगत की संपन्नता और गरिमा के आगे उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती। पृथ्वी पर पदार्थ और ऊर्जा यही दो घटक प्रधान हैं। इसी प्रकार अंतरिक्ष में संव्याप्त समृद्धि को वायुमंडल और वातावरण इन दो रहस्यों में बाँटा जा सकता है। वायुमंडल प्रकृति प्रधान है और वातावरण चेतनात्मक। वायुमंडल से वस्तुओं की मात्रा और स्तर की स्थिति का संबंध है तो वातावरण से मनुष्य की आकांक्षा और विचारणा प्रभावित होती है।

मनुष्य को एक सीमा तक स्वतंत्र माना गया है। उसकी अपनी पुरुषार्थपरायणता ही उसे स्वतंत्र बनाती और सिद्ध करती है, लेकिन वातावरण का दबाव आँधी-तूफान की तरह पड़ता है और उसके आवेग से जनमानस अमुक दिशा में दौड़ता, उड़ता दिखाई देता है। अंधड़ के साथ तिनके और पत्ते अपने आप उड़ते चले जाते हैं। पानी की धारा में हलका-भारी सब कुछ बहने लगता है। उसी प्रकार अंतरिक्ष में व्याप्त वातावरण का चेतनात्मक प्रभाव जनमानस को किसी दिशा विशेष में अनायास ही धकेलता और घसीटता चलता है।

वातावरण के चेतनात्मक प्रभाव की तरह वायुमंडल के उतार-चढ़ावों को भी विश्व की संपत्ति और परिस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों के रूप में आएदिन देखा जा सकता है। वायुमंडल की असंतुलित हलचलों के कारण ही उत्पन्न हुई अतिवृष्टि और अनावृष्टि से समस्त प्राणिजगत बुरी तरह प्रभावित होता रहता है। मौसम यदि प्रतिकूल हो तो उसका दुष्प्रभाव स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। उस स्थिति में दुर्बलता और रुग्णता का ऐसा दौर आता है कि स्वास्थ्य सँभाले नहीं सँभलता। मलेरिया, कालरा, मस्तिष्क ज्वर आदि का ऐसा दौर चलता है कि रोके नहीं रुकता। लू लगने और निमोनिया होने जैसी बीमारियों में मनुष्य का कम दोष होता है मौसम की प्रतिकूलता अपेक्षाकृत अधिक कारण बनती है।

प्रकृति की सहायता वायुमंडल की अनुकूलता के रूप में प्राप्त होती है। कहा जाता है कि सतयुग में प्रकृति अनुकूल रहती थी और मनुष्य की आवश्यकता के अनुरूप वस्तुओं में कभी कोई कमी-बेशी नहीं पड़ती थी। उस समय मौसम संतुलित रहता था। इससे प्रचुर मात्रा में आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होते थे। खाद्य पदार्थों में पोषक तत्त्व प्रचुर परिमाण में भरे रहते थे। वर्षा संतुलित होती थी न अतिवृष्टि का डर था और न अनावृष्टि की आशंका रहती थी। शीत और आतप में भी असंतुलन नहीं होता था। श्वास द्वारा ग्रहण की जाने वाली वायु में पोषक तत्त्वों का परिमाण और स्तर बढ़ा-चढ़ा रहता था। ऐसी-ऐसी अनेकानेक अनुकूलताएँ रहने के कारण प्राणि स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, प्रखर और तेजस्वी रहते थे। यह समर्थता शरीर तक ही सीमित नहीं रहती थी वरन उसके अंतराल में रहने वाले मन-मस्तिष्क को भी प्रभावित करती थी। कहा भी गया है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास रहता है। शरीर रोगी और व्याधिग्रस्त हो तो मनःक्षेत्र में भी रुग्णता और दुर्बलता आएगी ही।

वायुमंडल का स्वास्थ्य पर कितना अनुकूल और कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह एक तथ्य से और अच्छी तरह समझा जा सकता

है। संसार के विभिन्न भागों में बसे हुए मनुष्य तथा प्राणी स्वास्थ्य की दृष्टि से कहीं बहुत अच्छी तो कहीं बहुत बुरी दशा में रहते हैं। इसमें प्राणियों के पुरुषार्थ को श्रेय या दोष कम ही दिया जा सकता है, वायुमंडल का प्रभाव ही इसमें अधिक जिम्मेदार है। भारत में पंजाब और बंगाल के निवासियों का यदि स्वास्थ्य सर्वेक्षण किया जाए तो आकाश-पाताल जितना अंतर दिखाई देगा। उसके लिए इन क्षेत्रों के निवासी उतने अधिक दोषी या श्रेयभागी नहीं हैं जितना कि प्रकृति का प्रभाव उन्हें इन परिस्थितियों में रहने के लिए विवश करता है। आहार-विहार में थोड़ा-बहुत अंतर तो सर्वत्र पाया जाता है किंतु किसी क्षेत्र का प्रखर और किसी क्षेत्र का दुर्बल होना दैवयोग ही कहा जाएगा।

रूस के एक प्रांत उजवेकिस्तान में संसार में सबसे अधिक आयु तक जीवित रहने वाले व्यक्ति रहते हैं। इन दिनों वहाँ के निवासियों की औसत आयु सौ वर्ष से अधिक है। बहुत से लोग तो डेढ़ सौ वर्ष की आयु को पार कर चुके हैं और अभी स्वस्थ हालत में हैं। कितनों के ही पुत्र-पौत्रों और प्रपौत्रों की संख्या उनके जीवनकाल में ही एक-सौ से अधिक जा पहुँची है। उनके आहार-विहार में क्या विशेषता है, जिसके कारण दीर्घायुष्य का यह सुअवसर उन्हें सामूहिक रूप से प्राप्त हुआ है। इस तथ्य की गहराई से खोज-बीन करने पर भी ऐसी कोई बात सामने नहीं आई जिससे इसे चमत्कार का कारण कहा जा सके। वहाँ रहने वाले लोग भी अन्यत्र निवास करने वालों की तरह ही सामान्य जीवनयापन करते हैं। अन्य क्षेत्र के निवासियों जैसा ही उनका आहार-विहार है। नशेबाजी जैसे दोष उनमें भी मौजूद हैं। ऐसी दशा में पुरुषार्थ, संयम आदि की गरिमा स्वीकार करते हुए भी मात्र उन्हें ही स्वास्थ्य उपलब्धि का एकमात्र कारण नहीं ठहराया जा सकता। समाधान के रूप में यही तथ्य सामने आता है कि प्रकृति का अनुदान ही कारण है। विभिन्न क्षेत्रों में पाया जाने वाला वायुमंडल ही उस क्षेत्र के सामूहिक स्वास्थ्य को निर्धारित करता है। भारत में बिहार, बंगाल और उड़ीसा प्रांत के निवासियों की स्वास्थ्य स्थिति अन्य क्षेत्रों में निवास

करने वालों की अपेक्षा बुरी है। इस भिन्नता के कारण ही वायुमंडल की भिन्नता स्वीकार करनी ही पड़ती है। बड़े लोग अकसर पहाड़ी या उपयुक्त स्थानों पर वायुसेवन के लिए जाते और ठहरते हैं। उसके कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

वायुमंडल के अलावा मानवी काया पर सामूहिक रूप से वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अनुसंधान करने पर और भी चौंकाने वाले निष्कर्ष सामने आते हैं। सतयुग में मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों के शरीर विशालकाय भी होते थे और बलिष्ठ भी। पीछे उनमें गिरावट आती चली गई। इसका क्या कारण रहा? परिवर्तन के दिनों में प्राणियों ने क्या अच्छाई अपनाई और क्या बुराई बढ़ाई? इसका अध्ययन करने पर प्रत्यक्ष तथ्यों की सहायता अत्यंत स्वल्प मात्रा में ही मिलती है। दोष या श्रेय किसी को भी दिया जा सकता है पर तथ्य यह है कि प्रकृतिक्रम के नियोजित चक्र के सामने प्राणी असहाय ही प्रतीत होते हैं। लगता है उन्होंने भला-बुरा उगाया नहीं, प्रकृतितः उन पर शाप या वरदान अनायास ही लदते-बरसते रहे हैं।

वस्तुस्थिति का विश्लेषण सूक्ष्मदर्शियों द्वारा ही संभव है। वे मानवीय पुरुषार्थ का महत्त्व स्वीकारते हैं, फिर भी अंततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वायुमंडल का प्रभाव प्राणिजगत की प्रगति एवं अवगति के लिए बड़ी सीमा तक उत्तरदायी रहा है। प्राणि-जगत की बलिष्ठता ही नहीं, वृक्ष-वनस्पतियों, खनिज पदार्थों के आकार, स्तर एवं गुणधर्म पर भी वायुमंडल के परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल में जो स्थिति थी, वह पीछे नहीं रही। बीच-बीच में उत्थान-पतन के दौर भी आते रहे। इसमें पदार्थों को, वनस्पतियों को जीवधारियों को निजी रूप से दोषी नहीं माना जा सकता है। परिस्थितियाँ ही कारण रही हैं और परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव में व्यापक प्रभाव उत्पन्न करने वाले अविज्ञात कारण ही मदारी की तरह उँगली हिलाते और कठपुतली नचाते रहे थे।

यही बात वातावरण के संबंध में भी कही जा सकती है। प्राचीनकाल में मानवी चिंतन का स्तर उच्चस्तरीय था। उनकी कामनाएँ, रुचियाँ और महत्त्वाकांक्षाएँ उच्चस्तरीय थीं। उस समय के लोग ऊँचा सोचते और ऊँचा चाहते थे। फलत: उनके क्रिया-कलापों में भी पग-पग पर आदर्शों का पुट परिलक्षित होता था। ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव में शालीनता, चरित्र में सज्जनता और व्यवहार में उदारता का घुला रहना स्वाभाविक है। इसी स्तर के लोग धरती के देवता कहे जाते हैं। संभवत: ऐसे ही महामानवों की, देवताओं की परिकल्पना दिव्य लोकवासी देवताओं के रूप में की गई होगी और पीछे इन्हीं देव मान्यताओं का दर्शन एक स्वतंत्र शास्त्र बन गया होगा।

जो भी हो, यह मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि भावना और आस्था की दृष्टि से सतयुग के मनुष्य अब की अपेक्षा कई गुनी उत्कृष्टता से सुसंपन्न थे। इसी कारण उनका स्वभाव, पारस्परिक व्यवहार और सामान्य क्रिया-कलाप ऐसा होता था कि उससे सर्वत्र सौजन्य और सौमनस्य भरा-पूरा बना रहा। इसी कारण भारत को देवभूमि कहा जाता रहा तथा उसे '**स्वर्गादपि गरीयसी**' बताया जाता रहा है। इस देश के निवासियों का उच्चस्तरीय व्यक्तित्व, चरित्र चिंतन एवं क्रिया-कलाप ही इस देश को इस गौरव-गरिमा के स्तर तक पहुँचाने में समर्थ रहा। प्राचीन भारत के देवमानवों ने अपने आदर्श कर्तृत्व और उत्कृष्ट चिंतन से न केवल अपने देश को समृद्ध, समर्थ और सुसंस्कृत बनाया वरन अपने अनुदानों से विश्व के कोने-कोने में बसे मनुष्यों को भी नवजीवन प्रदान किया। प्राचीनकाल की सुखद परिस्थितियों का कारण उस समय के लोगों की उत्कृष्ट मन:स्थिति ही कही जानी चाहिए।

इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस ऐतिहासिक गौरव-गरिमा का श्रेय तो उस समय के हर नागरिक को दिया जा सकता है, पर सचाई यह है कि उन दिनों समष्टिगत वातावरण ही कुछ ऐसा था जिसके प्रवाह में ऊँचा सोचने और ऊँचा करने के अतिरिक्त

और कोई चारा नहीं था। प्रवाह चीरकर उलटा चलना कठिन होता है। आज निकृष्टता के प्रवाह में व्यक्ति विशेष को अपने निजी मनोबल के सहारे उत्कृष्टता अपनाना और उसे अंत तक मजबूती के साथ पकड़े रहना अति कठिन पड़ता है। ऐसा पौरुष कोई अपवाद ही दिखा पाते हैं। ठीक इसी प्रकार प्राचीनकाल में भी भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण के लिए असाधारण दुस्साहस ही करना होता होगा अन्यथा वातावरण के दबाव में सहज ही वैसा कुछ कर सकना सहज नहीं, अतीव दुष्कर ही था।

इन दिनों आकांक्षाओं और विचारणाओं का प्रवाह मानवी आदर्शों की विपरीत दिशा में उद्दंड दिशाहीन अंधड़ की तरह बह रहा है। इससे अनेकानेक परिष्कृत मस्तिष्क भी प्रभावित हो रहे हैं। अनुकरण के रूप में हिप्पीकट बाल और नट-नटनियों की सी वेशभूषा लोकप्रिय हो रही है। नई पीढ़ी उसी फैशन को आँखें मूँदकर अपना रही है। आततायी उद्दंडता को शौर्य-साहस का परिचायक माना जाने लगा है। मर्यादाएँ तोड़ने, नीति-नियमों को भंग करने, आतंक फैलाने और विग्रह के लिए उकसाने वाले लोग रातोंरात नेता बन जाते हैं। मात्र लेखनी और वाणी से ही दुष्प्रवृत्तियों का विरोध हो रहा है, व्यवहार में तो उनकी बढ़ोत्तरी ही होती जाती है। यह सब क्यों है? इसके लिए किन-किन को दोषी ठहराया जाए? यह गणना करने का जिन्हें अवकाश हो वे वैसा कर भी सकते हैं, पर वास्तविकता जाननी हो तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि चिंतन की दिशाधारा को प्रभावित करने वाला अदृश्य वातावरण ही कुछ विचित्र है और उसी से निकृष्टता को बहुत कुछ परिपोषण मिल रहा है।

इन विपन्नताओं के लिए वायुमंडल को और विभीषिकाओं के लिए वातावरण में बढ़ते जाने वाले अवांछनीय तत्त्वों को कारण माना जाए और उसके निवारण का ठोस उपाय सोचा जाए, सही मार्ग निकाला जाए, तभी परिस्थितियों में बदलाव संभव हो सकेगा।

❐

# विभीषिकाओं का उद्‌गम केंद्र

अदृश्य जगत इस दृश्यमान जगत का प्राण है। उसका विस्तार वैभव एवं सामर्थ्य स्रोत इतना बड़ा है कि प्रत्यक्ष को इसका नगण्य सा भाग कहा जा सकता है। जल का जितना प्रवाही स्वरूप है, उसकी तुलना में आकाश में भ्रमण करने वाला उसका वाष्प स्वरूप कहीं अधिक है। इसी प्रकार प्रकृति के अन्यान्य पदार्थ जितने पृथ्वी पर ठोस रूप में विद्यमान हैं, उसकी अपेक्षा वायुभूत होकर अनेक गुनी मात्रा में आकाश में उड़ते रहते हैं। अंतरिक्ष की तुलना में धरातल को रंचमात्र ही समझा जा सकता है। संपदा के असीम भांडागार आकाश में परिभ्रमण करते रहते हैं। परोक्ष विज्ञान के ज्ञाता उसमें से जिस वस्तु को जब जितनी मात्रा में आवश्यकता होती है, खींचकर हस्तगत कर लेते हैं। सिद्धियाँ इसी को कहते हैं। उनके सहारे दृश्य को अदृश्य और अदृश्य को दृश्य में परिणत किया जा सकता है।

अतींद्रिय क्षमताओं के चमत्कारी घटनाक्रम भी इसी आधार पर घटित होते हैं। दिव्य सामर्थ्यों के भंडार मानवी अंतराल में बीज रूप से विद्यमान हैं। उन्हें प्रसुप्त से जाग्रत, अदृश्य से प्रकट करने की विद्या को साधना कहते हैं। यह और कुछ नहीं अप्रकट का प्रकटीकरण मात्र है। बीज रूप में अपने इर्द-गिर्द वह समस्त वैभव बिखरा पड़ा है जिसे स्रष्टा की अनेकानेक विभूतियों के रूप में समझा-समझाया जाता रहता है।

शरीरधारी प्राणी इस धरातल पर विचरण करते और अपनी हलचलों का परिचय देते देखे जाते हैं। इसकी तुलना में अशरीरी प्राणियों की संख्या असंख्यो गुनी अधिक है जो आकाश में भ्रमणशील रहती है। यहाँ चर्चा जीवाणुओं, विषाणुओं की नहीं हो रही है वरन उन सूक्ष्म शरीरधारियों की हो रही है, जो इस समय भूत स्थिति में रह रहे हैं। जो कभी मनुष्य की तरह ही दृश्यमान थे, या निकट भविष्य में

फिर वैसा ही कलेवर धारण करने जा रहे हैं। प्रेत, पितर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, भूत-पिशाच, देव-दानव ऐसे ही जीवात्मा हैं, जो स्थूलशरीर से रहित होने पर भी सत्ताधारी एवं शक्तिशाली होते हैं। इनके अनुग्रह एवं आक्रोश से पृथ्वी के पदार्थों एवं प्राणियों को उपलब्धियों का लाभ एवं विपत्तियों का त्रास मिलता है। यह समुदाय प्रत्यक्ष संबद्ध तो नहीं दीखता और न उनके साथ अविज्ञात रूप में चलते रहने वाले आदान-प्रदान का आभास मिलता है, तो भी यह नहीं समझना चाहिए कि मनुष्य की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान अदृश्य जीवधारियों का अस्तित्व इस विशाल अंतरिक्ष में विद्यमान नहीं है। समय-समय पर उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष-परिचय में भी आता रहा है। पुराण गाथाओं में तो उन्हीं का कर्तृत्व प्रधान रूप से लिया गया है।

इन दिनों प्रति विश्वएंटी युनिवर्स की चर्चा ने वैज्ञानिक क्षेत्र में एक नई हलचल प्रस्तुत की है। अपने इसी विज्ञान जगत के पीछे अविच्छिन्न रूप से गुँथा हुआ एक दूसरे अदृश्य संसार का अस्तित्व खोज निकाला गया है। वह सामर्थ्य एवं विस्तार की दृष्टि से सूक्ष्म होने के कारण हर दृष्टि से वरिष्ठ पाया गया है। एंटी मैटर-एंटी एटम आदि के रूप में उसकी सत्ता एवं क्षमता का विस्तृत विवेचन होने लगा है और कहा जाने लगा है कि इन दोनों के बीच का संतुलन किसी कारण बिगड़ गया तो फिर महाप्रलय निश्चित है। इस संदर्भ में यह चर्चा भी होती रहती है कि यदि किसी प्रकार प्रत्यक्ष विश्व और परोक्ष विश्व के मध्य अधिक गहरा आदान-प्रदान चल पड़े तो अपने इसी धरातल पर स्वर्गलोक जैसी परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी।

विज्ञान जगत के दृश्य स्वरूप से उसका शक्ति तरंगों वाला अदृश्य क्षेत्र कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। ईथर, लैसर जैसी अविज्ञात शक्तियाँ उसी क्षेत्र की हैं। अणुशक्ति को भी ऐसी ही संपदा समझा जा सकता है। यह जड़ सृष्टि का विवरण है। प्राणियों के शरीर

भी इसी में सम्मिलित हैं। विज्ञान का भावी चरण इसी क्षेत्र में पदार्पण करने का है। इसके लिए उसे अनिवार्यत: अध्यात्म का अवलंबन लेना पड़ेगा। पैरा साइकॉलाजी मैटाफिजिक्स—एस्ट्रोफिजिक्स, पैराफिजिक्स आदि के सहारे इसका ढाँचा भी खड़ा किया जा रहा है।

अंतर्ग्रही शक्तियों का पृथ्वी के साथ संपर्क एवं आदान-प्रदान का स्वरूप ऐसा आश्चर्यजनक है कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। विश्व ब्रह्मांड की उपलब्ध जानकारी में पृथ्वी को सबसे अधिक सुंदर, समुन्नत एवं सुख-सुविधाओं से भरी-पूरी माना जाता है। यह स्थिति पृथ्वी की अपनी विशेषताओं के आधार पर विनिर्मित नहीं हुई है, वरन सौरमंडल के ग्रह-उपग्रहों के ब्रह्मांड स्थित अन्यान्य तारकों के संतुलित अनुदानों से उसे यह सौभाग्य मिला है। बच्चा अपने बलबूते ही अनेकानेक साधन-सुविधाओं से भरा-पूरा जीवन नहीं जीता। उसे यह स्थिति अभिभावकों, कुटुंब, संबंधी, पड़ोसी ही नहीं असंख्य व्यक्ति अपने-अपने ढंग से सहयोग प्रदान करके उपलब्ध कराते हैं। ठीक इसी प्रकार पृथ्वी को ऐसा अद्‌भुत सुयोग मिला है कि अनेकानेक ग्रह गोलकों के अनुग्रह ने इसकी स्थिति विलक्षण कलाकृति जैसी बना दी है। उत्तरी ध्रुव उन अंतर्ग्रही अनुदानों को खींचता है। बचे-खुचे कचरे को दक्षिण ध्रुव मार्ग से अंतरिक्ष के खड्डे में पटकता रहता है। पृथ्वी को प्राण पोषण सूर्य-चंद्र से नहीं अनेकानेक नक्षत्रों से उपलब्ध होता है। बादल बरसते दीखते हैं, पर लोक-लोकांतरों से जो बहुमूल्य संपदा बरसती है उसे कोई इसलिए जान-समझ नहीं पाता कि वह दृश्य न होकर अदृश्य होती है। परोक्ष होने के कारण तो लोग आत्मा तक को भूल जाते हैं और उसके अस्तित्व तक को नकारने लगते हैं।

चेतना का एक विशाल समुद्र आकाश में उसी प्रकार भरा हुआ है जैसा कि वायुमंडल। इसी को अदृश्य जगत समझा जाता है। वायुमंडल के प्राणवान या विषाक्त होने की बात सभी जानते हैं। धुआँ, विकिरण,

कोलाहल, धूल, धुंध आदि के कारण वायु प्रदूषण बढ़ने और उसके कारण मौसम पर,वनस्पतियों पर, प्राणियों पर, पदार्थों पर घातक प्रभाव पड़ने की बात सर्वविदित है। बढ़ते हुए तापमान से ध्रुवीय बरफ पिघलने से समुद्र के उमड़ पड़ने और हिम प्रलय के आधार बनने जैसी आशंकाओं से भरी हुई चेतावनियाँ आएदिन पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। ठीक इसी प्रकार उपयुक्त वायुमंडल की संजीवनी का भी ऊहा-पोह रहता है। लोग उपयुक्त जलवायु वाले स्थानों में रहकर स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न करते हैं। सेनेटोरियम प्राय: ऐसे ही स्थानों पर बनते हैं। पंजाबियों और बंगालियों के स्वास्थ्य में जो अंतर पाया जाता है, उसमें भी उन क्षेत्रों की जलवायु को ही प्रधान कारण माना जाता है। सरदी के दिन स्वास्थ्य सुधरने और गरमी में बिगड़ने की बात भी वायुमंडलीय परिवर्तनों पर आधारित है।

अदृश्य के उपरोक्त ऊहा-पोह में एक कड़ी और जुड़ती है मानवी हलचलों के कारण चेतनात्मक वातावरण के प्रभावित होने की। विचारों का भी अब रेडियो तरंगों के समतुल्य एक सशक्त इकाई के रूप में आकलन किया जा रहा है। उनके कारण व्यक्ति परस्पर प्रभावित होता है। यह सुनिश्चित है। सत्संग-कुसंग के भले-बुरे परिणामों में भी विचारशक्ति की प्रभाव क्षमता का निरूपण होता ही है। बात इससे भी एक कदम और आगे की है। चेतनात्मक वातावरण भी उनसे प्रभावित होता है। जन-समुदाय की विचारणा, आकांक्षा, चेष्टा जिस स्तर की होती है उसके अनुरूप अदृश्य वातावरण बनता है और भली-बुरी परिस्थितियों के रूप में प्रकट होता है। सतयुग और कलियुग की परिस्थितियों में जो अंतर पाया जाता है उसका कारण विधाता का मनमरजी या नियति का निर्धारण नहीं वरन मनुष्य के चिंतन चरित्र से उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया है।

सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि इन दिनों वायुमंडल में प्रदूषण बढ़ने की तरह ही चेतनात्मक वातावरण के समुद्र में भी भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट

चरित्र के कारण विषाक्तता बेतरह बढ़ चली है। समुद्र तल पर तेल बिखर जाने से उन क्षेत्रों के जलचर घुटन से संत्रस्त होकर मरण के मुख में जाते देखे हैं। ठीक इसी प्रकार अदृश्य वातावरण में आसुरी तत्त्वों की वृद्धि से अनेकानेक संकट एवं विग्रह खड़े होते हैं। न सुलझते हैं, न घटते हैं और न टलते हैं। सामान्य स्तर के समाधान प्रयास प्राय: निरर्थक ही चले जाते हैं। प्रस्तुत परिस्थितियों का विश्लेषण इसी प्रकार किया जाना चाहिए।

इस संबंध में अब संसार के सभी विद्वान, ज्योतिर्विद और अतींद्रिय द्रष्टा एकमत हैं कि युग परिवर्तन का समय आ पहुँचा है। उनके अनुसार यह समय युगसंधि की वेला है और इन दिनों संसार में अधर्म, अशांति, अन्याय, अनीति तथा अराजकता का जो व्यापक बोलबाला दिखाई दे रहा है, उसके अनुसार परिस्थितियों की विषमता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। ऐसे ही समय में धर्म की रक्षा और अधर्म का विध्वंस करने के लिए भगवान का अवतार लेने की शास्त्रीय मान्यता है। **'यदा यदा हि धर्मस्य'** की प्रतिज्ञा के अनुसार ईश्वरीय सत्ता इस असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए कटिबद्ध है और संतुलन साधने के लिए सूक्ष्मजगत में उसी की प्रेरणा से परिवर्तनकारी हलचलें चल रही हैं।

युग परिवर्तन के समय ईश्वरीय शक्ति के प्राकट्य और अवतरण की प्रक्रिया सृष्टिक्रम में सम्मिलित है। असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए, अपनी प्रेरणा पुरुषार्थ प्रकट करने के लिए भगवान वचनबद्ध हैं। ऐसे ही अवसरों पर गीता में दिया गया उनका **'तदात्मानं सृजाम्यहं'** का आश्वासन ऐसे ही अवसरों पर प्रत्यक्ष होता रहा है। आज की स्थितियाँ भी ऐसी हैं कि उनमें ईश्वरीय शक्ति के अवतार की प्रतीक्षा की जा रही है और सूक्ष्मदर्शी ईश्वरीय सत्ता की अवतरण प्रक्रिया को संपन्न होते देख रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह समय कलियुग के अंत तथा सतयुग के आरंभ का है, इसलिए भी इस समय को युगसंधि की वेला कहा जा रहा है। यद्यपि कुछ रूढ़िवादी पंडितों का कथन है कि युग ४ लाख ३२ हजार वर्ष का होता है। उसके अनुसार अभी एक चरण अर्थात एक लाख आठ हजार वर्ष ही हुए हैं। इस हिसाब से तो अभी नया युग आने में ३ लाख २४ हजार वर्ष की देरी है। वस्तुतः यह प्रतिपादन भ्रामक है। शास्त्रों में कहीं भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि ४ लाख ३२ हजार वर्ष का एक युग होता है। सैकड़ों वर्षों तक धर्म-शास्त्रों पर पंडितों और धर्मजीवियों का ही एकाधिकार रहने से इस संबंध में जनसाधारण भ्रांत ही रहा और इतने लंबे समय तक की युग गणना के कारण उसने न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पतन की निराशा भरी प्रेरणा दी वरन श्रद्धालु भारतीय जनता को अच्छा हो या बुरा, भाग्यवाद से बँधे रहने के लिए विवश किया। इस मान्यता के कारण ही पुरुषार्थ और पराक्रम पर विश्वास करने वाले भारतीयों को अफीम के घूँट के समान इन अति रंजित कल्पनाओं का भय दिखाकर अब तक बौद्धिक पराधीनता में जकड़े रखा गया।

इस संबंध में ज्ञातव्य है कि जिन शास्त्रीय संदर्भों से युग गणना का यह अति रंजित प्रतिपादन किया है, वहाँ अर्थ को उलट-पुलट कर तोड़ा-मरोड़ा ही गया है। जिन संदर्भों को इस प्रतिपादन की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया गया है, वे वास्तव में ज्योतिष के ग्रंथ हैं। वह प्रतिपादन गलत नहीं है, प्रस्तुतीकरण ही गलत किया गया है अन्यथा मूल शास्त्रीय वचन अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं। उनमें ग्रह-नक्षत्रों की भिन्न-भिन्न परिभ्रमण गति तथा ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से ही यह युग गणना है।

जितने समय में सूर्य अपने ब्रह्मांड की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है उसी अवधि को चार बड़े भागों में बाँटकर चार देवयुगों की मान्यता बनाई गई और ४ लाख ३२ हजार वर्ष का एक देव युग माना गया। प्रचलित युग गणना के साथ तालमेल बिठाने के लिए छोटे युगों

को अंतर्दशा की संज्ञा दे दी गई और उसी कारण वह भ्रम उत्पन्न हुआ। अन्यथा मनुस्मृति, लिंग पुराण और भागवत आदि ग्रंथों में जो युग गणना प्रस्तुत की गई है, वह सर्वथा भिन्न ही है। मनुस्मृति में कहा गया है—

**ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रामणं समासतः।**
**एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तान्निबोधत॥**
**चत्वार्याहु सहस्त्राणि वर्षाणां तत्कृतयुगम्।**
**तस्य तावच्छती संध्या संध्याशश्च तथाविधः॥**
**इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।**
**एकापायेन वर्तन्ते सहस्त्राणि शतानि च॥**

*—मनु. १/६८-७०*

ब्रह्माजी के अहोरात्रि में सृष्टि के पैदा होने और नाश होने में जो युग माने गए हैं, वे इस प्रकार हैं—चार हजार वर्ष और उतने ही शत अर्थात चार सौ वर्ष की पूर्व संध्या और चार सौ वर्ष की उत्तर संध्या इस प्रकार कुल ४८०० वर्ष का सतयुग, इसी प्रकार तीन हजार छह सौ वर्ष का त्रेता, दो हजार चार सौ वर्ष का द्वापुर और बारह सौ वर्ष का कलियुग।

हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व में भी युगों का हिसाब इसी प्रकार बताया गया है। यथा—

**अहोरात्रं भजेत सूर्यो मानवं लौकिकं परं।**
**नामुपादाय गणनां शृणु या सांख्यामरिंदम॥**

*—हरिवंश पर्व ८/२*

**चत्त्वायेव सहस्त्राणि वर्षाणातुकृत युगम्।**
**तावच्छती भवेत् संध्या संध्याशश्च तथा नृप॥**
**त्रीणि वर्ष सहस्त्राणि त्रेता स्यात् परिमाणतः।**
**तस्याश्च त्रिशती संध्या संध्याशश्च तथाविधः॥**

**तथा वर्ष सहस्त्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम्।**
**तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥**
**कलिवर्षसहस्त्रं व संख्यातोऽत्र मनीषिभिः।**
**तस्यापि शतिका संध्या संध्यांशश्चैव तद्विधः॥**

*—हरिवंश पर्व ८/१२-१५*

हे अरिंदम! मनुष्य लोक के दिन-रात का जो विभाग बतलाया गया है उसके अनुसार युगों की गणना सुनिए, चार हजार वर्षों का एक कृतयुग होता है और उसकी संध्या चार सौ वर्ष की तथा उतना ही संध्यांश होता है। त्रेता का परिमाण तीन हजार वर्ष का है और उसकी संध्या तथा संध्यांश भी तीन-तीन सौ वर्ष का होता है। द्वापर को दो हजार वर्ष कहा गया है। उसकी संध्या तथा संध्यांश दो-दो सौ वर्ष के होते हैं। कलियुग को विद्वानों ने एक हजार वर्ष का बताया है और उसकी संध्या तथा संध्यांश भी सौ वर्ष के होते हैं।

लिंग पुराण तथा श्रीमदभागवत में भी इसी प्रकार की युग गणना मिलती है। भागवत के तृतीय स्कंध में कहा गया है—

**चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।**
**संख्यातानि सहस्त्राणि द्विगुणानि शतानि च॥**

*— भागवत ३/११/१९*

चार, तीन, दो और एक ऐसे कृतादि युगों में यथाक्रम द्विगुण सैकड़ों की संख्या बढ़ती है। आशय यही है कि कृतयुग को चार हजार वर्ष में आठ सौ वर्ष और जोड़कर ४८०० वर्ष माने गए। इसी प्रकार शेष तीनों युगों की कालावधि समझी जाए। कुछ स्थानों पर मनुष्यों के व्यवहार के लिए बारह वर्ष का एक युग भी माना गया है, जिसको एक हजार से गुणा कर देने पर देवयुग होता है, जिसमें चारों महायुगों का समावेश हो जाता है। इस बारह वर्ष के देवयुग को एक हजार से गुणा करने पर १ करोड़ २० लाख वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन हो जाता है, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति और लय हो आता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इसी युग की बात कही है—

**सहस्त्रयुगपर्यन्तमर्ध्यब्रह्मणो विदुः।**
**रात्रिं युग सहस्त्रान्तां तेऽहोरात्र विदोजनाः॥** — *गीता ८/१७*

अहोरात्र को तत्त्वतः जानने वाले पुरुष समझते हैं कि हजार महायुगों का समय ब्रह्मदेव का एक दिन होता है और ऐसे ही एक हजार युगों की उसकी रात्रि होती है। लोकमान्य तिलक ने इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि महाभारत,मनुस्मृति और यास्कनिरुक्त में इस युग गणना का स्पष्ट विवेचन आता है। लोकमान्य तिलक के अनुसार, ''हमारा उत्तरायण देवताओं का दिन है और हमारा दक्षिणायन उनकी रात है। क्योंकि स्मृति ग्रंथों और ज्योतिष शास्त्र की संहिताओं में भी उल्लेख मिलता है कि देवता मेरु पर्वत पर अर्थात उत्तर ध्रुव में रहते हैं अर्थात दो अयनों छह-छह मास का हमारा एक वर्ष देवताओं के एक दिन-रात के बराबर और हमारे ३६० वर्ष देवताओं के ३६० दिन-रात अथवा एक वर्ष के बराबर होते हैं। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग माने गए हैं। युगों की काल गणना इस प्रकार है कि कृतयुग में चार हजार वर्ष, त्रेता युग में तीन हजार, द्वापर में दो हजार और कलि में एक हजार वर्ष। परंतु एक युग समाप्त होते ही दूसरा युग एकदम आरंभ नहीं हो जाता, बीच में दो युगों के संधिकाल में कुछ वर्ष बीत जाते हैं। इस प्रकार कृतयुग के आदि और अंत में प्रत्येक ओर चार सौ वर्ष का, त्रेता युग के आगे और पीछे प्रत्येक ओर तीन सौ वर्ष का, द्वापर के पहले और बाद में प्रत्येक ओर दो सौ वर्ष का तथा कलियुग के पूर्व और अनंतर प्रत्येक ओर सौ वर्ष का संधिकाल होता है, सब मिलाकर चारों युगों का आदि-अंत सहित संधि काल दो हजार वर्ष का होता है। ये दो हजार वर्ष और पहले बताए हुए सांख्य मतानुसार चारों युगों के दस हजार वर्ष मिलाकर कुल बारह हजार वर्ष होते हैं। — *गीता रहस्य भूमिका, पृष्ठ १९३*

इन गणनाओं के अनुसार हिसाब फैलाने से पता चलता है कि वर्तमान समय संक्रमण काल है। प्राचीन ग्रंथों में हमारे इतिहास को

पाँच कल्पों में बाँटा गया है—(१) महत कल्प १ लाख २ हजार ८ सौ वर्ष विक्रमीय पूर्व से आरंभ होकर ८५८०० वर्ष पूर्व तक (२) हिरण्यगर्भ कल्प ८५८०० विक्रमीय पूर्व से ६१८०० वर्ष पूर्व तक (३) ब्राह्म कल्प ६०८०० विक्रमीय पूर्व से ३७८०० वर्ष पूर्व तक (४) पाद्म कल्प ३७८०० विक्रम पूर्व से १३८०० वर्ष पूर्व तक और (५) वाराह कल्प १३८०० विक्रम पूर्व से आरंभ होकर अब तक चल रहा है।

कलियुग संवत् की शोध के लिए राजा पुलकेशिन ने विद्वान ज्योतिषियों से गणना कराई थी। दक्षिण भारत के 'इहोल' नामक स्थान पर प्राप्त हुए एक शिलालेख में इसका उल्लेख मिलता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि कल्कि का प्राकट्य इन्हीं दिनों होना चाहिए। 'पुरातन इतिहास शोध संस्थान' मथुरा के शोधकर्त्ताओं ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है और ज्योतिष के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस समय ब्रह्मरात्र का तमोमय संधिकाल है।

इसी संधिकाल में असंतुलन उत्पन्न होता है। दैवी शक्तियों पर आसुरी प्रवृत्तियों का संघात होता है तथा अनीतिमूलक अवांछनीयताएँ उत्पन्न होती हैं। नवनिर्माण की सृजन शक्तियाँ ऐसे ही अवसरों पर जन्म लिया करती हैं, क्योंकि तपसाधन होने के कारण ऐसे समय विभिन्न अनयकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। मनुष्यकृत संकटों और प्राकृतिक आपदाओं की वृद्धि जब चरम सीमा पर पहुँचने लगती है तो उसी समय निर्माणकारी सत्ता अपने सहयोगियों के साथ अवतरित होती है और जहाँ एक ओर अधर्म, अन्याय, अनाचार बढ़ता है, वहाँ ये शक्तियाँ धर्म, संस्कृति, सदाचार, सद्गुण तथा सद्भावों को बढ़ाकर संसार में सुख-शांति की स्थापना के लिए यत्नशील होती हैं।

संक्रमण वेला में किस प्रकार की परिस्थितियाँ बनती और कैसे घटनाक्रम घटित होते हैं, इसका उल्लेख महाभारत के वन पर्व में इस प्रकार आता है—

द्विजातिपूर्वको लोकः क्रमेण प्रभविष्यति।
ततः कालान्तरेऽन्यस्मिन् पुनर्लोकविवृद्धये॥
भविष्यति पुनर्दैवमनुकूलं मदृच्छया।
यदा सूर्यश्च चन्द्रश्च तथा तिष्यबृहस्पती॥
एकराशौ समेष्यन्ति प्रपत्स्यति तदा कृतम्।
कालर्षौ च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानि च॥
प्रदक्षिणा ग्रहाश्चापि भविष्यन्त्यनुलोमगाः।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्यति निरामयम्॥

*—महाभारत-वनपर्व (मार्कण्डेय समस्या पर्व १८९/८९-९२)*

तदनंन्तर कालांतर में सत्ययुग आरंभ होगा और फिर क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण प्रकट होकर अपने प्रभाव का विस्तार करेंगे। उस समय लोक के अभ्युदय के लिए पुनः अनायास दैव अनुकूल होगा। जब सूर्य, चंद्रमा और बृहस्पति एक साथ पुष्य नक्षत्र एवं तदनुरूप एक राशि कर्क में पदार्पण करेंगे, तब सत्ययुग का प्रारंभ होगा। उस समय मेघ समय पर वर्षा करेगा। नक्षत्र शुभ एवं तेजस्वी हो जाएँगे। ग्रह प्रदक्षिणा भाव से अनुकूल गति का आश्रय ले अपने पथ पर अग्रसर होंगे। उस समय सबका मंगल होगा। देश में सुकाल हो जाएगा। आरोग्य का विस्तार होगा तथा रोग-व्याधि का नाम भी नहीं रहेगा।

इस प्रकार का ग्रहयोग अभी कुछ समय पहले ही आ चुका है। अन्यान्य गणनाओं के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि युग परिवर्तन का ठीक यही समय है। ठीक इन्हीं दिनों युग बदलना चाहिए। अनय को निरस्त करने और सृजन को समुन्नत बनाने वाली दिव्य शक्तियों का प्रबल पुरुषार्थ इस युगसंधि में प्रकट हो रहा है जो सन् १९८० से आरंभ हुआ एवं सन् २०२० तक माना जा रहा है।

❐

# परोक्ष के संशोधन हेतु संगठित पुरुषार्थ

वातावरण जिसमें हम रहते हैं, चेतनात्मक है। उसका संबंध प्राण-प्रवाह के स्तर से है। ऐसी मान्यता है कि सत्युग में ऐसा अदृश्य प्राण-प्रवाह चलता था जिससे व्यक्तित्वों की भावना, मान्यता प्रभावित होती थी। इसी कारण उनके गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता भरी होती थी। चिंतन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शवादिता का समावेश रहता था। मानवी पुरुषार्थ का भी इसमें योगदान रहता था, पर इस प्रयोजन को सफल बनाने में अदृश्य वातावरण की भूमिका-अनुकूलता का भी भारी योगदान रहता था। परिस्थितियाँ मन:स्थिति के आधार पर इतने बड़े करवट लेती हैं कि उसे भाग्यविधान, ईश्वरेच्छा जैसा नाम देना होता है। इसलिए अदृश्य जगत में संव्याप्त वायुमंडल की तरह ही उसका दूसरा पक्ष वातावरण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता।

इन दिनों बढ़ती विषाक्तता एवं उससे वायुमंडल तथा वातावरण दोनों के ही प्रभावित होने की स्थिति गंभीर पर्यवेक्षण करें तो ज्ञात होता है कि इनका मूल कारण प्रचलन-प्रवाह तक ही नहीं है। इसकी जड़ें अदृश्य वातावरण में बड़ी गहराई तक घुसी दृष्टिगोचर होती हैं। दुश्चिंतन की भरमार से विषाक्त अदृश्य वातावरण और इससे फिर लोकमानस में असुरता-निकृष्टता का बढ़ना, यह एक ऐसा कुचक्र है जो एक बार चल पड़ने पर फिर टूटने का नाम नहीं लेता। लोकचिंतन व प्रवाह का अदृश्य वातावरण से अन्योन्याश्रय संबंध है।

इस कुचक्र को संघबद्ध प्रयासों द्वारा तोड़ना ही होगा। परमात्मा की तरह आत्मा को भी अपना उत्तरदायित्व निभाना होगा। अवतार प्रकरण की सूक्ष्म प्रक्रिया अपने स्थान पर है लेकिन सुधार-प्रयोजन का दूसरा पक्ष मनुष्यकृत है, जिसे जाग्रत व्यक्ति आपत्ति धर्म की तरह अपनाते और स्रष्टा के प्रयोजन में हाथ बँटाते हैं। उन्हें अध्यात्म

उपचारों का आश्रय लेना पड़ता है। विशालकाय सामूहिक धर्मानुष्ठान प्रायः इसी प्रयोजन के लिए किए जाते हैं।

लंका विजय में असुरों का संहार तो हुआ पर अदृश्य वातावरण में विषाक्तता भरी होने के कारण लगा कि सामयिक समाधान भर पर्याप्त नहीं, अदृश्य का भी संशोधन होना चाहिए। श्रीराम ने दस अश्वमेधों का नियोजन इसी निमित्त किया। कुरुक्षेत्र में महाभारत विजय के उपरांत कंस, दुर्योधन, जरासंघ से तो पीछा छूटा पर अदृश्य की विषाक्तता यथावत रहने से स्थायी समाधान न सूझा। अंततः अध्यात्म उपचार का आश्रय लिया गया एवं विशालकाय राजसूय यज्ञ की भी ऐसी ही अध्यात्मपरक योजना बनाई गई।

सामूहिक धर्मानुष्ठानों से अदृश्य वातावरण की संशुद्धि के और भी अगणित प्रमाण-उदाहरण इतिहास-पुराणों में भरे पड़े हैं। आसुरी सत्ता से भयभीत देवगणों को रक्षा का आश्वासन ऋषिरक्त के संचय से बनी सीता के माध्यम से मिला था। इसी प्रकार देवता जब संयुक्त रूप से प्रजापति के पास पहुँचे, एक स्वर से प्रार्थना की तो महाकाली प्रकट हुई जिन्होंने असुरों का संहार किया। संघशक्ति की ही यह परिणति थी। जिस समय राम-रावण युद्ध हो रहा था, अगणित अयोध्यावासी मौन धर्मानुष्ठान रत थे ताकि अनय परास्त हो, नीति की विजय हो। ये सभी उदाहरण सामूहिकता के माध्यम से वातावरण को संशोधित करने के घटनाक्रमों पर लागू होते हैं।

सामूहिकता में असाधारण शक्ति है। दो निर्जीव वस्तुएँ मिलकर एक+एक=दो ही बनती हैं जबकि प्राणवानों की एकात्मकता कई गुना हो जाती है। तिनके-तिनके मिलकर रस्सा बँटने, धागों के बुन जाने से कपड़ा बनने, ईंटों से इमारत, बूँदों से समुद्र तथा सींकों से बुहारी बनने के उदाहरण यही बताते हैं कि मिलकर एक हो जाने की परिणति कितनी महान होती है? एक लय-ताल से जब संघात किया जाता है तो बड़ी विस्फोटक परिणति की संभावनाएँ दृश्यमान होने लगती हैं। तालबद्ध ढंग से परेड करती फौज ध्वनि शक्ति द्वारा पुल तोड़ सकती है

तथा एक छोटा सा पेंडुलम निरंतर संघात से गर्डर तोड़कर भवन धराशायी कर सकता है। समूहबद्ध ढंग से की गई प्रार्थना में वह प्रभाव है जो वातावरण के प्रवाह को बदल-उलटकर असंभव को भी संभव बना सकता है। आज जो परिस्थितियाँ हैं, वे न रहकर सतयुग के अरुणोदय जैसी स्वर्गीय परिस्थितियाँ उभर सकने जैसी भविष्यवाणियाँ दिव्यदर्शियों ने अपने भविष्य कथन में व्यक्त की हैं, तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

मानव निर्मित वातावरण की जहाँ चर्चा की जा रही है, वहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अवसर आने पर इसकी भूमिका बड़ी विशिष्ट होती है। एक चिंतन—एक प्रयास जब आँधी की तरह चलता है, तो सारे वातावरण को हिलाकर रख देता है। इसका एक उदाहरण युद्धोन्माद 'मॉब मेंटलिटी' के रूप में देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में दिमाग पर मात्र लड़ने का आवेश छाया होता है। हवा में तेजी और गरमी कुछ ऐसी होती है जिसके कारण सामान्य व्यक्ति भी सम्मोहित होकर, असामान्य पुरुषार्थ करते देखे जाते हैं।

महात्मा गांधी का सत्याग्रह आंदोलन, दांडी यात्रा मानव निर्मित प्रवाह का एक स्वरूप है। अगणित व्यक्ति स्वेच्छा से जेल गए। मस्ती की इस जंग में अनेकों शहीद हो गए। स्वतंत्रता इस आँधी प्रवाह की परिणति थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय विंस्टन चर्चिल ने हाथ की उँगलियों से अँगरेजी का 'वी' (V) बनाते हुए एक नया नारा दिया था—'वी फॉर विक्ट्री।' इस नारे ने जनसाधारण का आत्मबल ऐसा बढ़ाया कि अंततः जीत नाजीवाद से संघर्ष करने वाली समूह शक्ति की ही हुई।

नियाग्रा जल प्रपात के बारे में अमेरिकी जनजातियों में यह मान्यता संव्याप्त है कि जिस दिन यह झरना बंद हो गया, प्रलय आ जाएगी। संयोगवश इसी सदी में एक बार हिम ग्लेशियर के नदी के उद्गम स्रोत पर जम जाने से कुछ घंटों के लिए झरने से पानी गिरना बंद हो गया। विश्व के सबसे बड़े प्रपात के थम जाने से सारा अमेरिकन

समुदाय अनायास ही शंकित हो उठा। सारे राष्ट्र के चर्चों में घंटियाँ बजने लगीं एवं सामूहिक प्रार्थना की जाने लगी। कुछ ही घंटों में वह प्रपात फिर बहने लगा। पर्यावरण विशेषज्ञों का कथन है कि सामान्यत: ऐसा होता नहीं (ग्लेशियर का जमना) परंतु होने पर इतना शीघ्र पूरे प्रवाह से नदी का शीत ऋतु में भी बह निकलना अपने आप में अविज्ञात रहस्य है। स्काइलैब के गिरने व सारे विश्व में उसके गिरने से होने वाली क्षति से आशंकित जनसाधारण द्वारा प्रार्थना व उसके समुद्र पर गिरकर नष्ट होने का वर्णन तो कुछ समय पहले का ही है।

मुसलिमों की नमाज का एक सुनिश्चित समय होता है। अजान का समय होते ही जो व्यक्ति जहाँ भी है, तुरंत अपनी उपासना का शुभारंभ कर देता है। ईसाई रविवार को प्रात: एकत्र होते हैं तथा चर्च में सामूहिक प्रार्थना करते हैं। मिलिटरी की 'रिट्रीट' जब भी होती है, जो व्यक्ति जहाँ होता है, वहीं सावधान मुद्रा में खड़ा हो जाता है। ये सारे उदाहरण एक समय एवं सामूहिकता की शक्ति की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए बताए जा रहे हैं।

प्रज्ञा अभियान का प्रस्तुत प्रयास पुरुषार्थ कई विशेषताएँ लिए हुए है। अगणित व्यक्तियों की प्राण ऊर्जा, एकसा चिंतन, शब्दशक्ति की अपरिमित क्षमता, एक समय—एक साथ जप, ध्यान तथा महाप्रज्ञा की प्रेरणा का चिंतन, इन सभी का प्रज्ञा पुरश्चरण में समावेश है। साधक पाँच मिनट तक सूर्योदय के साथ ही गायत्री मंत्र का मौन जप करते हैं। अंतरिक्ष में परिशोधन हेतु आहुतियों का यह परोक्ष यज्ञ है। जितना अधिक उच्चारण इस मंत्र का सृष्टि के आदि से अभी तक हुआ है उतना किसी का नहीं हुआ। शब्दशक्ति ओंकार गुंजन के रूप में समग्र अंतरिक्ष में संव्याप्त है। ऐसी स्थिति में उच्चारित मंत्र की शक्ति का प्रभाव द्विगुणित हो जाता है। समधर्मी कंपन एकदूसरे को प्रभावित करते ही हैं।

शब्दशक्ति सूक्ष्म मानव शरीर तथा परोक्ष अंतरिक्षीय संसार को प्रभावित करने वाली एक समर्थ ऊर्जा शक्ति है। यह जीभ से नहीं, मानव

अंत:करण से निकलती है। लोकप्रवाह को निकृष्टता से उलटकर उत्कृष्टता की ओर मोड़ने के लिए उच्चस्तरीय शब्द-सामर्थ्य चाहिए। साधक स्तर की उत्कृष्ट जीवनचर्या वाले मांत्रिक जब एक साथ पुरश्चरण संपादित करते हैं तो ऋषिकल्प महामानवों जैसी वातावरण को आमूलचूल बदल देने की सामर्थ्य विकसित होने लगती है। तप:पूत उच्चारण ही मंत्र जाप है। सदाशयता को संघबद्ध करने और एक दिशा में चल पड़ने की व्यवस्था बनाने के लिए इस जप का सामूहिक अनुष्ठान स्वरूप ही आदर्श है। श्रुति ने आदेश भी दिया है—**'सहस्त्र सा कमर्चत्'** अर्थात हे पुरुषो! तुम सभी सहस्त्रों मिलकर देवार्चन करो। वस्तुत: सामवेद और ऋग्वेद की समस्त ऋचाएँ सामूहिक गान ही तो हैं।

लोहे का लंबा गर्डर, सीमेंट का एक बड़ा पिलर अकेला एक व्यक्ति नहीं उठा पाता। जब कई व्यक्ति मिलकर 'हईसा' के निनाद के साथ जोर लगाते हैं तो वे उसे उठाकर खड़ा कर देते हैं। बड़े-बड़े भवन इससे बन जाते हैं लेकिन जब यही शब्द शक्ति शुभ कामना का चिंतन लिए एक साथ कई व्यक्तियों द्वारा उच्चारित होती है, एकसी तरंगें जन्म लेती हैं और बदले में शुभ विचारों की वर्षा ऊपर से करती हैं। **'धियो यो न: प्रचोदयात्', 'अग्नेनय सुपथा राये अस्मान्', 'आनो भद्रा कृणवो यन्तु विश्वत:'**—इन सभी मंत्रों में सारे समूह के लिए श्रेष्ठ विचारों की, सन्मार्ग पर चलने की भारी प्रार्थना की गई है। एकसी भाव लहरें एक ही चित्तवृत्ति को जन्म देती हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक फ्रिक्वेंसी पर तरंगें उत्पन्न होने पर वे अप्रत्याशित परिवर्तन लाती हैं। अल्ट्रासोनिक तरंगों से रोगों का निदान व चिकित्सा की जाने लगी है। माइक्रोवेव्स से न केवल संपर्क वरन ऊर्जा उत्पन्न करने में भी सफलता मिली है। गायत्री मंत्र की विशेषता उसे वह स्तर प्रदान करती है जिससे वह सामूहिक उच्चारण के माध्यम से अंतरिक्ष को मथने में समर्थ हो सके। सिंपेथेटिक वाइब्रेशन के सिद्धांत पर आधारित यह प्रक्रिया 'लाइटनिंग' तड़ित विद्युत जैसी सामर्थ्य रखती है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि शब्दशक्ति से इलैक्ट्रोमैग्नेटिक लहरें उत्पन्न होती हैं जो स्नायु प्रवाह पर वांछित प्रभाव डालकर उनकी सक्रियता ही नहीं बढ़ातीं वरन विकृत चिंतन को रोकती व मनोविकार मिटाती हैं। एक अन्य निष्कर्ष के अनुसार संसार के पचास व्यक्ति यदि एक साथ एक शब्द का तीन घंटे तक उच्चारण करें तो उससे छह हजार खरब वाट विद्युत शक्ति पैदा होगी। सारे विश्व में इससे घंटों तक प्रकाश किया जा सकता है।

विशिष्ट बात यह है कि पृथ्वी जिसका चुंबकत्व ०.५ गॉस है, हमेशा ०.१ से १०० साइकल्स प्रति सेकंड की गति से स्पंदन छोड़ती रहती है। इन चुंबकीय धाराओं को 'शू मैन्स रेजोनेंस' कहा जाता है। इसकी गति साढ़े सात साइकल्स प्रति सेकंड है। यह चुंबकीय प्रभाव लगभग उतना ही है, जितना कि मस्तिष्क का विद्युत उद्‌भव। ब्रेनवेव्स की तरंगें भी अल्फा व थीटा वेब्स के मध्य साढ़े सात साइकल्स की होती हैं। यह तथ्य व्यष्टि चेतना के उस महत चेतना से विद्युत चुंबकीय संबंधों को सिद्ध करता है। मंत्रशक्ति के कंपन्न दोनों ही चेतना धाराओं को 'इनट्यून' करके उन्हें बड़े विस्तार से समग्र ब्रह्मांड में फैला देते हैं।

शोध निष्कर्ष बताते हैं कि शरीर में प्राणशक्ति को प्रवाहित रखने के लिए उत्तरदायी 'सिरोटोनिन' नामक हारमोन 'पीनियल' ग्रंथि से प्रातःकाल ही प्रवाहित होता है। मन की सक्रियता, काया की स्फूर्ति सार्थक मंत्रोच्चार हेतु अनिवार्य मानी जाती है।

बड़े वजन उठाने या धकेलने वाले मजूर एक साथ हल्ला बोलकर संयुक्त बल लगाने के सिद्धांत को भली प्रकार समझते हैं। इसी आधार पर वे कठिन कार्य संपन्न करते हैं। संयुक्त बल एक साथ लगाने का क्रम न बने तो फिर बड़े भार वाले चट्टान को इधर से उधर ले पहुँचना और किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता है। संयुक्त शक्ति के ऐसे प्रमाण-परिचय छप्पर उठाने, आग बुझाने जैसे छोटे-मोटे कार्यों में आएदिन दृष्टिगोचर होते रहते हैं।

बिखराव में सामर्थ्य का कितना अपव्यय होता है और उसके विकेंद्रीकरण से उत्पन्न चमत्कार कितने प्रचंड होते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। सूर्य किरणें पृथ्वी पर पड़ती और छितराती रहने के कारण मात्र गरमी रोशनी भर उत्पन्न करती हैं। यदि एक इंच परिधि की सूर्य किरणें आतिशी शीशे के द्वारा एकत्रित कर ली जाएँ तो देखते-देखते चिनगारियाँ उठने लगेंगी और उनके दावानल बनने में देर न लगेगी।

तनिक सी भाप के केंद्रीकरण द्वारा प्रेशर कुकर से लेकर विशालकाय बॉयलर प्रचंड सामर्थ्य का परिचय देते देखे गए हैं। वर्षा का बिखरा जल जहाँ-तहाँ बहता रहता है, पर जब वह किसी नदी-नाले में एकत्रित होकर एक दिशा पकड़ता है तो उसे हाथी तक बहा ले जाने वाले प्रवाह का रौद्र रूप धारण करते देखा गया है। बिखरी हुई ढेरों बारूद को जलाने पर भक से उड़ती देखी गई है, किंतु यदि उसकी तनिक सी मात्रा एक कारतूस में बंद करके छोटी नली वाली बंदूक द्वारा चला दी जाए तो सिंह के आर-पार निकलने, कड़े लक्ष्य बेधने में सफल होती है। विचारों की एकाग्रता से उत्पन्न होने वाली ध्यान शक्ति का महत्त्व योगीजन भली प्रकार समझते हैं।

देव-दानव संघर्ष में देवताओं के बार-बार हारने और असुरों के बार-बार जीतने के पीछे कारण ढूँढ़ा जाए तो बिखराव और एकत्रीकरण के भिन्न परिणामों का प्रमाण-परिचय स्पष्टत: सामने आ खड़ा होता है। देवता हर दृष्टि से वरिष्ठ और समर्थ होते हुए भी इसलिए हारते रहे कि उनने संयुक्त शक्ति विकसित करने की आवश्यकता नहीं समझी और अपनी ढपली, अपना राग बजाते रहे। जबकि दैत्यों ने संगठन का महत्त्व समझा और गिरोह बनाकर हमला किया। इस एक ही विशेषता के कारण वे जीते, यद्यपि वे हर दृष्टि से देवताओं की तुलना में पिछड़े हुए थे।

धर्मशीलों की संकल्प शक्ति का एकत्रीकरण और उसका सामयिक समस्या के समाधान में उपयोग है, एक महत्त्वपूर्ण आधार जिसके कारण सामूहिक धर्मानुष्ठानों से उन परिणामों की आशा की गई है जो प्रस्तुत विपन्नता से विश्व-व्यवस्था को उबार सकें।

## परिशोधन हेतु धर्मानुष्ठानों की आवश्यकता

वृक्ष का तना आँखों से दीखता है पर उसमें जीवन-संचार करने वाली जड़ें जमीन में नीचे दबी होती हैं, दीखती नहीं। मनुष्य का शरीर दीखता है, प्राण नहीं। परिस्थितियों का आकलन होता है पर उनके पीछे कठपुतली के धागों जैसा सूत्र-संचालन करने वाली मन:स्थिति को समझने-समझाने की ओर ध्यान ही नहीं जाता। यही बात दृश्यमान भली-बुरी परिस्थितियों के संबंध में भी है। अनुकूलता और प्रतिकूलता से संबंधति घटनाएँ, हलचलें, समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं और आमतौर से उनके उपचार साम, दाम, दंड, भेद के आधार पर सोचे, खोजे और कार्यान्वित किए जाते रहते हैं। यह उचित भी है और आवश्यक भी, किंतु इतने भर को पर्याप्त नहीं माना जाना चाहिए।

निशाने पर गोली लगती है और बंदूक उसे चलाती है। इस प्रत्यक्ष के पीछे चलने वाले का अभ्यास और साहस भी परोक्ष रूप से काम करता है। उसके अभाव में कारतूस और बंदूक सब प्रकार ठीक होने पर भी काम बनता नहीं। पौष्टिक आहार और कारगर औषधि उपचार की महिमा अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं, पर पाचन-तंत्र का सही होना भी कम आवश्यक नहीं। यहाँ भी प्रत्यक्ष की तुलना में परोक्ष की गरिमा कम नहीं आँकी जा सकती। अच्छी पौध लगाने से ही बगीचा खड़ा नहीं हो जाता, भूमि की उर्वरता, मौसम की अनुकूलता तथा माली की कुशलता भी उसके लिए आवश्यक है। अच्छे विद्यालय की भरती और सुयोग्य अध्यापक की नियुक्ति से ही कोई विद्वान नहीं हो जाता इसमें छात्र की लगन और मेधा अपनी भूमिका निभाती है।

व्यक्ति और समाज के सम्मुख प्रतिकूलताओं, कठिनाइयों, समस्याओं के समाधान के निराकरण और अभिवर्द्धन के कड़ुवे-मीठे उपचार करने और साधन जुटाने होते हैं। प्रताड़ना और सहायता अपना-अपना काम करती हैं। इतने पर भी परोक्ष वातावरण की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर सफलता-असफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है। विज्ञजन

उस संबंध में भी आवश्यक ध्यान रखते हैं। फसल उगाने के लिए वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा करते हैं अथवा अन्य उपायों से खेत को नम रखने का प्रबंध करते हैं। परोक्ष के संबंध में उपेक्षा बरतने से काम चलता नहीं। साधनों की तरह पराक्रम का भी, परिस्थितियों की तरह भावनाओं का भी ध्यान रखना होता है। परोक्ष भी प्रत्यक्ष से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के संबंध में तो यह और भी अधिक आवश्यक है। युग परिवर्तन जैसे व्यापक और विशद प्रयोजनों में प्रत्यक्ष से भी अधिक परोक्ष का योगदान रहता है।

रावण के आसुरी आतंक का निवारण करने के लिए लंकाकांड महायुद्ध होने, लंकादहन से लेकर सेतुबंध बाँधने तक की बात सर्वविदित है। युद्ध में भयंकर रक्तपात हुआ था और अंततः राम को विजय का श्रेय मिला था। सीता वापस लौटी और राज्याभिषेक का उत्सव हुआ था। रामचरित्र के ज्ञाता इस प्रसंग को भलीभाँति जानते हैं। समझा जाता है कि इतने भर से ही तत्कालीन समस्या का समाधान हो गया होगा। सुख चैन की परिस्थितियाँ बन गई होंगी।

तत्कालीन तत्त्वदर्शियों ने एकत्रित होकर यह निष्कर्ष निकाला था कि अदृश्य में संव्याप्त विषाक्तता ने उन दिनों लंका से लेकर, चित्रकूट, पंचवटी तक अगणित असुरों को उपजाया और आतंक बढ़ाया था। उसका अदृश्य घटाटोप लंकाविजय के उपरांत भी यथावत बना हुआ था। कुछ ही समय के उपरांत उसी दुःखद घटनाक्रम की फिर पुनरावृत्ति होती, कुछ के मर जाने पर रक्त बीज की तरह नए असुर उत्पन्न होते और नए उपद्रव खड़े करते। इसलिए राम विजय को पर्याप्त न माना जाए, अदृश्य का परिशोधन भी किया जाए। इनके लिए जिन आध्यात्म उपचारों की आवश्यकता थी उनकी विज्ञजनों द्वारा व्यवस्था बनाई गई थी। दस अश्वमेध यज्ञों की योजना बनी और संपन्न हुई थी। काशी का दशाश्वमेध घाट, भगवान राम के द्वारा संपन्न हुई अदृश्य परिशोधन की उस यज्ञ शृंखला की अभी भी साक्षी प्रस्तुत करता है।

जड़ बनी रहने पर टहनी कटने से भी कुछ बनता नहीं। जड़ें व नई कोपलें उगाती रहती हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ ही दिन बाद दूसरा विश्वयुद्ध और भी भयंकर रूप से लड़ा गया। दूसरे के बाद तीसरे की तैयारी तथा विनाश विभीषिका और भी बढ़ी-चढ़ी है। चंबल क्षेत्र के डाकू निपटते ही नहीं। कितने ही पकड़े गए, कितने मरे, कितनों ने आत्मसमर्पण किए पर वह आतंक अपने स्थान पर यथावत विद्यमान है। सभी जानते हैं कि स्वच्छता का समुचित प्रबंध न होने के कारण सड़न से अगणित मक्खी-मच्छर पैदा होते रहते हैं। मलेरिया विभाग के अधिकारी मच्छर मारने के लिए अपने तोप-तमंचों का भरपूर प्रयोग करते हैं। टनों डी.डी.टी. की बमवारी होती है किंतु मच्छर हैं जो टस से मस नहीं होते वरन और भी अधिक ढीठ बनते जाते हैं। उनने अपनी प्रकृति ही विष-भक्षण की बना ली है। स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष उपचार ही सब कुछ नहीं है। उसके लिए गंदगी और नमी का भी निराकरण होगा। पत्ते तोड़ने की अपेक्षा अधिक अच्छा यह है कि जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया जाए।

लंकाविजय और रामराज्य स्थापना के बीच दस अश्वमेधों की शृंखला यह बताती है कि वातावरण में छाई हुई विषाक्तता का निराकरण और अदृश्य जगत में देवत्व का अभिवर्द्धन एक ऐसा आयोजन था जिसे महायुद्ध और महासृजन की मध्यवर्ती कड़ी कहा जा सकता है। दो पहियों के बीच में वह धुरी आँखों से ओझल रहने पर भी कम आवश्यक नहीं होती।

कृष्णावतार के समय भी इसी उपक्रम की पुनरावृत्ति हुई। कंस, दुर्योधन, जरासंध, शिशुपाल जैसों से निपटने के लिए श्रीकृष्ण ने ध्वंस लीला रची। महाभारत युद्ध भी लड़ा गया। पांडव जीते। इसके उपरांत परीक्षित के नेतृत्व में द्वापर में सतयुग की झलक दिखाने तथा संगठित राष्ट्र को चक्रवर्ती की आवश्यकता पूर्ण करने की व्यवस्था बनी। महाभारत का तात्पर्य था विशाल भारत। उस लक्ष्य की पूर्ति भली

प्रकार हुई। तत्कालीन भारत का नक्शा समूचे जंबू द्वीप के साथ गुँथा हुआ दीखता है।

यह ध्वंस और सृजन की उभयपक्षीय प्रक्रिया हुई। इतना बन पड़ने पर भी अदृश्य जगत में भरी हुई विषाक्तता का निराकरण आवश्यक था अन्यथा कुछ ही समय उपरांत उस अनाचार की पुनरावृत्ति होने लगती। नए कंस दुर्योधन उपजते और नए महाभारत की आवश्यकता पड़ती। भगवान कृष्ण ने उस परोक्ष समस्या का निराकरण आवश्यक समझा और प्रख्यात राजसूय यज्ञ के रूप में वातावरण परिशोधन का अध्यात्म उपचार नियोजित किया। उससे कुछ तो काम चला पर अधूरापन रह जाने के कारण कुछ ही समय उपरांत परीक्षित पुत्र जनमेजय ने नागयज्ञ के नाम से विष-परिशोधन का दूसरा अध्यात्म उपचार संपन्न किया।

भगवान राम और भगवान कृष्ण द्वारा नियोजित उपरोक्त दो घटनाएँ सर्वविदित हैं। पुरातन इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि समय-समय पर ऐसे ही अनेक उपचार संपन्न होते रहे हैं। पीछे तो उनकी एक क्रमबद्ध व्यवस्था परिपाटी ही बन गई ताकि कूड़े का ढेर जमा होने पर सफाई करने की अपेक्षा साथ की साथ बुहारी लगती, धुलाई होती और फिनाइल छिड़की जाती रहे।

विशेष पर्वों, विशेष तीर्थों में धर्मानुष्ठान होते रहने की परंपरा उसी उद्देश्य के निमित्त बनी और चली। तीन-तीन वर्ष बाद हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक के कुंभ आयोजन ऐसे ही हैं, जिनमें साधनात्मक उपचार और ज्ञानयज्ञ की उभयपक्षीय व्यवस्था साथ-साथ चलती थी। प्रस्तुत समस्याओं पर मूर्द्धन्य मनीषियों द्वारा गंभीर विचार करके किन्हीं निर्णय निष्कर्षों पर पहुँचा जाता था। बड़ी संख्या में धर्म-प्रेमी उस अवसर पर उपस्थित होते थे और विद्वज्जनों के निर्धारणों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व कंधे पर लेकर प्रयाण करते थे। ऐसे ही बड़े सम्मेलन आयोजन बुद्धकाल में भी

संघारामों के माध्यम से संपन्न होते थे। उनमें उन सभी देश क्षेत्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे जिनमें बौद्ध धर्म का प्रचार पहुँच पाया था।

बड़े और केंद्रीय बाजपेय यज्ञों को छोटे क्षेत्रीय एवं स्थानीय धर्म समारोहों में बाँटा गया। उनके लिए तिथि, समय, स्थान बार-बार बदलने के स्थान पर यह उचित समझा गया कि किसी पर्व पर किसी तीर्थ में ऐसे आयोजन हर वर्ष होते रहें। उनका क्रम निरंतर जारी रहे। इस विकेंद्रीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह समझा गया कि समीपवर्ती धर्मप्रेमी उनमें सरलतापूर्वक पहुँच सकें जबकि दूरवर्ती बड़े आयोजनों में उनका पहुँच सकना समयसाध्य, श्रमसाध्य और व्ययसाध्य होने के कारण कठिन असुविधाजनक पड़ता। इन दिनों भी अनेकानेक तीर्थों में नियत पर्वों पर हर साल धार्मिक मेले होते हैं। यद्यपि आज उनका रूप विकृत उपहासास्पद जैसा हो गया है और वे मनोरंजक मेले-ठेलों से अधिक कुछ रह नहीं गए हैं तो भी अतीत के उद्देश्यों की झाँकी किसी न किसी रूप में मिलती है। खंडहरों को देखकर भी यह अनुमान लगता है कि वहाँ कभी कितने भव्य भवन खड़े रहे होंगे।

इन दिनों वाणी अत्यधिक मुखर हुई है। उसके पीछे ऊर्जा का नियोजन करने वाली साधना उपेक्षा के गर्त में गिर पड़ी है। यही कारण है कि जहाँ देखा जाए वहाँ छोटे-बड़े जन समारोहों में मात्र गीत-प्रवचन भर की उछल-कूद होती रहती है। प्रचारात्मक-उत्तेजनात्मक प्रयोजन ही इनके सहारे पूर्ण होता है। भावनात्मक-आध्यात्मिक अदृश्य को प्रभावित करने वाले, प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने वाले धर्मानुष्ठानों का समन्वय भी रहना चाहिए, यह तथ्य विस्मृत हो जाने के कारण विभिन्न संस्थाएँ अपने-अपने वार्षिकोत्सव गीत मंगल के साथ धूमधाम से संपन्न करती रहती हैं। राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक संस्थाओं के छोटे-बड़े समारोह आएदिन देखने को मिलते रहते हैं। पर प्रचलन के पीछे काम करने वाली—भावनात्मक,

श्रद्धासिक्त वातावरण बनाने वाली प्रक्रिया के दर्शन नहीं होते जिसे कभी सामूहिक धर्मानुष्ठान कहा और अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। प्राचीनकाल के सतयुगी प्रचलनों के पीछे तत्कालीन समाज व्यवस्था तो प्रत्यक्ष थी ही, परोक्ष रूप में उन धर्मानुष्ठानों सहित संपन्न होने वाले ज्ञानयज्ञों का भी कम महत्त्व न था जिन्हें बाजपेय यज्ञ कहा जाता था। जिनका जनमानस के परिष्कार और अदृश्य वातावरण के अनुकूलन में असाधारण योगदान रहता था। प्रज्ञा पुरश्चरण के माध्यम से उसी अस्त-व्यस्त पराक्रम को नए सिरे से पुनर्जीवित किया गया है। प्रस्तुत विपन्नताओं के समाधान में उसका असाधारण योगदान होगा, यह सुनिश्चित है।

❐

# संस्कारवानों की खोज हेतु गायत्री तीर्थ के प्रयास

युग सृजन में सहयोगी कोई भी हो सकता है। उसका उत्तर-दायित्व कंधों पर ओढ़ने वाले सृजनशिल्पियों को नल-नील जैसा प्रबुद्ध एवं परिपक्व होना चाहिए। ऐसी भूमिका निभा सकना हर किसी के वश की बात नहीं है। सिखाने-पढ़ाने से थोड़ा सा काम तो चलता है पर प्रखरता मौलिक एवं संस्कारगत होनी चाहिए। लोहे की मजबूती उसकी संरचना में ही सन्निहित है। कारखानों में ढालने, खरादने का काम होता है, कृत्रिम लोहा नहीं बन सकता और न उसका स्थानापन्न किसी अन्य धातु को बनाया जा सकता है।

प्रशिक्षण, वातावरण एवं संपर्क का प्रभाव तो पड़ता है पर महामानव इतने से ही नहीं बन जाते। उनके लिए संस्कारगत मौलिकता एवं संचित प्रखरता की भी आवश्यकता होती है। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को आग्रहपूर्वक माँगा था और उन्हें बला तथा अति बला विद्याएँ सिखाकर महान परिवर्तन के लिए उपयुक्त क्षमता संपन्न बनाया था। चाणक्य ने चंद्रगुप्त, समर्थ रामदास ने शिवाजी, बुद्ध ने आनंद, मछेंद्रनाथ ने गोरख,रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद को बड़ी कठिनाई से ढूँढ़ा था। आगंतुकों की भारी भीड़ में से इन सभी शक्ति संपन्नों को कोई काम का न लगा। बड़ी कठिनाई से ही वे अपने थोड़े से अनुयायी उत्तराधिकारी ढूँढ़ने में सफल हुए। विवेकानंद ने निवेदिता से कहा था मुझे तुम्हारे लिए यूरोप की यात्रा करनी पड़ी।

अवतार के समय देवता उसकी सहायता करने आते और देह धारण करते हैं। सामान्य मनुष्यों की मनःस्थिति नर पशुओं जैसी होती है। वे पेट और प्रजनन के लिए मरते-खपते हैं तथा लोभ, मोह, अहंकार की लिप्साओं से बने कोल्हू में पिलते रहते हैं। यही उनकी

प्रवृत्ति और नियति होती है। उनमें थोड़ा सा उत्साह तो भरा जा सकता है और एक सीमा तक प्रगतिशील भी बनाया जा सकता है किंतु बहुत प्रयत्न करने पर भी वे देव भूमिका निभा सकने में सफल नहीं हो पाते। इसके लिए संचित संस्कारों की आवश्यकता है। खिलौने बालू के नहीं चिकनी मिट्टी के बनते हैं। हथौड़े की चोट जंग लगे लोहे नहीं, फौलादी इस्पात ही सह पाते हैं।

एक जैसी शक्ल, सूरत और समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों के मध्य भी कई बार स्तर की दृष्टि से जमीन-आसमान जैसा अंतर पाया जाता है। यह उनकी उस आंतरिक संरचना का होता है जो जन्म-जन्मांतरों के संचित संस्कारों से बनती है। यह संपदा किसके पास है, यह जाँचना, जन-जन की तलाशी लेने के समान है। तलाशी ऐसी भी नहीं जो चोरों, जमाखोरों के यहाँ पुलिस द्वारा छापा मारकर पकड़ने की तरह सरल हो। वस्तुएँ तो पकड़ी जा सकती हैं, पर अंतस् की प्रवृत्तियों की जाँच-पड़ताल और खोज-बीन करना कठिन है। लोग भीतर कुछ होते हैं और बाहर कुछ बनते रहते हैं। दंभ बहुत और तथ्य कम वाले बहुरूपियों, अभिनेताओं और बाजीगरों से जन समाज भरा पड़ा है। इनकी गहराई में कैसे उतरा जाए? खारी जलराशि से भरे समुद्र में गहरी डुबकी मारकर मोतियों को किस तली तलहटी में ढूँढ़ा जाए। उन क्षेत्रों में पाए जाने वाले मगरमच्छों से बचने और जूझने की कुशलता के बिना कोई गोताखोर सफल नहीं हो सकता। इस प्रयास में भी ऐसी तैयारी करनी पड़ रही है।

युग परिवर्तन सृष्टि के इतिहास में अभूतपूर्व अवसर है। पिछले दिनों दुनिया बिखरी थी। स्थानीय समस्याओं के सामयिक समाधान करना ही तत्कालीन महामानवों का छोटा सा उत्तरदायित्व रहता था। रावण, कंस, दुर्योधन आदि के अनाचार सीमित क्षेत्र में थोड़े से व्यक्तियों के द्वारा होते हैं। अधिक होने से उसके समाधान भी लंकायुद्ध, महाभारत जैसे उपचारों से निकले और मुट्ठी भर प्रतिभाओं ने वे कार्य संपन्न

कर दिए। वैसी स्थिति अब नहीं है। दुनिया सिकुड़कर बहुत छोटी हो गई है। हवा का प्रभाव एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचता है। ६०० करोड़ मनुष्य अब एकदूसरे को प्रकारांतर से प्रभावित करते हैं।

इन विषम परिस्थितियों में बहुमुखी समस्याओं की जड़ें लोक-मानस में अत्यंत गहराई में घुसी हुई होने के कारण, युग परिवर्तन अतीव कठिन है। गुण, कर्म, स्वभाव की लोकधारा को उलटना, समुद्र के खारी जल को हिमालय की संपदा बना देना कितना कठिन है उसे हर कोई नहीं समझ सकता। उसे भुक्तभोगी बादल ही जानते हैं कि उसमें कितना साहस करने, कितना भार ढोने, कितना उड़ना और कितना त्याग करना पड़ता है? युग परिवर्तन के भावी प्रयासों को लगभग इसी स्तर का माना जाना चाहिए।

युगसंधि की वेला अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन वर्षों में महान परिवर्तन होंगे और विकट समस्याओं का समाधान करना होगा। बुझते दीपक की लौ, प्रभात से पूर्व की सघन तमिस्रा, मरणासन्न की साँस, चींटी के उगते पंख, हारे जुआरी के दाँव को देखकर,मरता सो क्या न करता की उक्ति को चरितार्थ होते प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। असुरता अपनी अंतिम घड़ियों में जीवन-मरण की लड़ाई लड़ेगी और संकट, विग्रह अपेक्षाकृत अधिक बढ़ेंगे। इसी प्रकार देवत्व की प्रतिष्ठापना के लिए भी बीजारोपण के साथ प्रचंड उत्साह के साथ काम करने वाले किसान जैसी भूमिका भी दर्शनीय होगी। दोनों पक्ष एकदूसरे से सर्वथा विपरीत होते हुए भी परम साहसिकता का परिचय देंगे। एक-दूसरे के साथ टकराने से भी पीछे न हटेंगे। साँड़ लड़ते हैं तो खेत-खलिहानों को तोड़-मरोड़कर रख देते हैं। युग परिवर्तन प्रसव पीड़ा जैसे कष्टकारक होते हैं। उसमें डॉक्टरों, नर्सों को पूर्णतया जागरूक रहना पड़ता है। प्रसूता की तो जान पर ही बीतती है। उसकी सुरक्षा-सांत्वना के अतिरिक्त इन लोगों को नवजात शिशुओं के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी पहले से ही जुटानी होती हैं।

युगसंधि में दोहरे उत्तरदायित्व जाग्रत आत्माओं को सँभालने पड़ते हैं। विनाशकारी परिस्थितियों से जूझना और विकास के सृजन प्रयोजनों को सोचना। किसान और माली को भी यही करना पड़ता है। खरपतवार उखाड़ना, बेतुकी डालियों को काटना, पशु-पक्षियों से फसल को रखाना जैसी प्रतिरोध सुरक्षा की जागरूकता दिखाने पर ही उनके पल्ले कुछ पड़ेगा अन्यथा परिश्रम निरर्थक चले जाने की आशंका बनी रहेगी। उन्हें एक मोर्चा सृजन का भी सँभालना पड़ता है। बीज बोना, खाद देना, सिंचाई का प्रबंध करना रचनात्मक काम हैं। इसकी उपेक्षा की जाए तो उत्पादन की आशा समाप्त होकर ही रहेगी। इसे दो मोर्चों पर दुधारी तलवार से लड़ने के समतुल्य माना जा सकता है। युगसंधि में जाग्रत आत्माओं को यही करना पड़ता है। समस्या ६०० करोड़ मनुष्यों की है। वे एक स्थान पर नहीं समस्त भूमंडल पर बिखरे हुए बसे हैं। अनेक भाषा बोलते हैं। अनेक धर्म संप्रदायों का अनुसरण करते हैं। शासन पद्धतियों और सामाजिक परंपराओं में भिन्नता है। मन:स्थिति और परिस्थिति में भी भारी अंतर है। इतना होते हुए भी उन सबसे संपर्क साधना है। युग चेतना से परिचित और प्रभावित करना है। इतना ही नहीं संपर्क, प्रशिक्षण और अनुरोध को इतना प्रभावी बनाना है जिसके दबाव से लोग अपनी आदतों, इच्छाओं और गतिविधियों में अभीष्ट परिवर्तन कर सकने के लिए सहमत ही नहीं तत्पर भी हो सकें। यह कार्य कहने-सुनने में सरल प्रतीत हो सकता है पर वस्तुत: उतना कठिन और जटिल है। ऐसा उत्तरदायित्व उठाने वालों को कैसा होना चाहिए उसका अनुमान लगाने पर यही कहना पड़ता है कि उनकी मजबूती घहराती नदियों पर मीलों लंबे पुल का उस पर दौड़ने वाले वाहनों का बोझ उठा सकने वाले पायों जैसी होनी चाहिए।

विशिष्ट समय पर ऐसी ही विशिष्ट आत्माओं का अवतरण होता है। वे जन्मजात रूप से ऐसी धातु के बने होते हैं कि उनका उपयोग विशेष प्रयोजनों के लिए संभव हो सके। अणुशक्ति उत्पन्न

करने के लिए यूरेनियम जैसे रासायनिक पदार्थों की जरूरत पड़ती है। यह नकली नहीं बन सकता। सोने की अपनी मौलिक विशेषता है। स्वर्णकार उसे आभूषणों में गढ़ तो सकता है पर कृत्रिम सोना अभी तक बनाया नहीं जा सका। यों नकली नग ही जेवरों में प्रयुक्त होते हैं, पर उनका निर्माण भी बहुत होता है फिर भी असली मणि-माणिक अभी भी विशेषता के कारण अपना मूल्य और महत्त्व यथास्थान बनाए हुए हैं। महामानवों की ढलाई, गढ़ाई के लिए शांतिकुंज की फैक्टरी अनवरत तत्परता के साथ लगी हुई है। उसके उत्पादन का स्तर भी बढ़ रहा है और परिमाण भी। इस प्रगति को संतोषजनक रहते हुए भी उत्साहवर्द्धक नहीं कहा जा सकता। उस विशिष्टता की मात्रा अभी भी कम ही दृष्टिगोचर हो रही है जिसे देव स्तर की प्रतिभा कहा जाए। जो महामानवों की भूमिका निभा सकने के लिए अभीष्ट सुसंस्कारिता की पूँजी अपने साथ लेकर जन्मी हो।

कृषि कार्य में किसान का पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं है, उपयुक्त भूमि और सही बीज का भी उसकी सफलता में कम योगदान नहीं होता। शिल्पियों की कुशलता कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो उन्हें भी उपयुक्त उपकरण चाहिए। कच्चा माल सही न हो तो कारखाने बढ़िया चीज कैसे बनाएँ? बालू से कोई कुम्हार टिकाऊ बरतन नहीं बना सकता। चिकित्सकों के उपचार रोगी की जीवनीशक्ति के आधार पर सफल होते हैं। कच्चे लोहे की तलवार से मोर्चा जीतना बलिष्ठ योद्धा के लिए भी संभव नहीं होता। मौलिक विशिष्टता की अपनी आवश्यकता है। खरादा तो उसी को जाता है जिसमें अपनी कड़क हो। तेल तिली में से निकलता है, आग ईंधन के सहारे जलती है। तिली का प्रबंध न हो तो बालू से तेल निकालने में कोल्हू कैसे सफल हो? पानी मथने के लिए कितना ही श्रम क्यों न किया जाए, मक्खन निकालने में सफलता न मिलेगी। ईंधन के बिना आग की लपटों का दर्शन होने और अभीष्ट गरमी उत्पन्न करने का प्रयोजन नहीं ही सध सकता।

युग परिवर्तन की इस ऐतिहासिक वेला में ऐसी देव आत्माओं की विशिष्ट आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जिनमें मौलिक प्रतिभा विद्यमान है। सामान्य स्तर की श्रेष्ठता हर मनुष्य में मौजूद है। उसे सीमित समय में सीमित मात्रा में उभार सकना ही संभव हो सकता है। कम समय में, कम परिश्रम से जिन्हें महान उत्तरदायित्वों का वहन कर सकने के लिए उपयुक्त बनाया जा सके। ऐसी प्रतिभाएँ सर्वत्र उपलब्ध नहीं हो सकतीं और न उनसे बड़े पुरुषार्थ की आशा की जा सकती है जैसी कि इस विषम वेला में आवश्यकता पड़ रही है। इसके लिए विशेष रूप से खोज-बीन करने की आवश्यकता पड़ेगी।

मोती पाए तो समुद्र में ही जाते हैं, पर उन्हें निकालने के लिए पनडुब्बी को गहरी डुबकी लगाने की और सुविस्तृत क्षेत्र की खोज-बीन करनी होती है। मोती न तो इकट्ठे मिलते हैं और न किसी किनारे पर जमा रहते हैं। बहुमूल्य वस्तुएँ सदा से इसी प्रकार खोजी जाती रही हैं। प्रकृति के अंतराल में बिजली, ईथर आदि तत्त्व अनादिकाल से भरे पड़े थे, पर उनसे लाभान्वित हो सकना तभी संभव हुआ जब उन्हें खोजने के लिए वैज्ञानिकों ने असाधारण श्रम किया। जंगलों में बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ पुरातनकाल में भी उगती थीं और अब भी उनकी संजीवनी क्षमता यथावत मौजूद है पर उन्हें हर कोई, हर जगह नहीं पा सकता। चरक ने दुर्गम स्थानों की यात्रा की और उस परिभ्रमण में वनस्पतियों के गुण-धर्म खोजे। इस शोध का परिणाम ही चिकित्सा विज्ञान के रूप में सामने आया और उसका लाभ समूची मानव जाति ने उठाया। चरक यदि वह प्रयास न करते तो बूटियाँ अपने स्थान पर बनी रहतीं और रोगी अपनी जगह। उनका आपस में संबंध ही न बनता तो दोनों ही घाटे में रहते। न जड़ी-बूटियाँ यश पातीं और न मनुष्यों को रोग निवृत्त का अवसर मिलता।

भूगर्भ में खनिज संपदा के अजस्र भंडार अनादिकाल से भरे पड़े हैं। पर उनका उत्खनन और दोहन जिस लगन के आधार पर संभव हो

सका उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती रहेगी। धातुएँ, गैसें, तेल जैसी अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भूगर्भ की गहरी खोज-बीन करने से ही संभव हुईं। पौराणिक गाथा के अनुसार समुद्र मंथन से चौदह रत्न निकाले गए और उनसे देवताओं तथा मनुष्यों ने सौभाग्यशाली बनने का अवसर पाया। यदि मंथन प्रयास न किया जाता तो समुद्र की संपदा उसके गहन अंतराल में ही धँसी रहती। लाभ उठाना तो दूर उनका किसी को पता तक नहीं चलता।

ज्ञान और विज्ञान की सुविस्तृत संपदा ही मनुष्य को समर्थ, संपन्न, कुशल बना सकी है। यह उपलब्धियाँ बादलों से नहीं बरसतीं वरन अनवरत अध्यवसाय के द्वारा ही एक-एक मंजिल पार करते हुए इन्हें खोज निकालना संभव हुआ है। यदि शोध प्रयासों को मानवी प्रवृत्ति में स्थान न मिला होता, आग जैसी क्रांतिकारी उपलब्धियाँ करतलगत न होतीं तो आदिम मनुष्य की पीढ़ियाँ अभी भी अपने वानर वर्ग के अन्य साथियों के साथ गुजर कर रही होतीं। कोलंबस ने अमेरिका खोज निकाला और संसार के विकास, विस्तार में एक नए अध्याय का समावेश हुआ। खोजियों ने अंतरिक्ष खोजा है और उसमें से उतना पाया है जितना कि रत्नाकर कहे जाने वाले समुद्र से भी न मिल सका। कहते हैं कि खोजने वालों ने ही भगवान को ढूँढ़ निकाला अन्यथा वह क्षीरसागर में शेषनाग के ऊपर चादर ताने गहरी नींद में सो रहे थे। मनुष्येतर प्राणियों के लिए वह अभी भी उसी तरह अविज्ञात स्थिति में पड़े हुए है। आत्मा का अस्तित्व मनुष्य ने ही खोजा है। अन्यथा अन्य जीवधारी अपनी सत्ता शरीर तक ही सीमाबद्ध किए रहते हैं। धर्म और अध्यात्म मनुष्य की अपनी खोज है।

अपने समय में एक बहुत बड़ा काम युग मानवों को खोज निकालना है। बड़े काम के लिए बड़ी हस्तियाँ ही चाहिए। उन्हें एक सीमा तक ही शिक्षा और परिस्थितियाँ विकसित कर सकती हैं। नेपोलियन और सिकंदर किसी सैनिक संस्था द्वारा विनिर्मित नहीं किए जा सके।

वसिष्ठ और विश्वामित्र किस आश्रम में, किस साधन के सहारे विनिर्मित किए जा सके? इसका पता लग नहीं पा रहा है। अंगद और हनुमान, भीम और अर्जुन, चाणक्य और कुमारजीव, बुद्ध और महावीर, गांधी और पटेल, शिवाजी और प्रताप किस प्रकार तैयार किए जाएँ उसका कोई उपाय अभी भी सूझ नहीं पड़ रहा है। ईसा, जरदुश्त, अरस्तू और सुकरात, लिंकन और वाशिंगटन, विवेकानंद और गोविंद सिंह, नानक और कबीर किस प्रकार तैयार किए जाएँ, इसका कोई मार्ग मिल नहीं रहा है। शतरूपा, कौशल्या, सीता, सावित्री, मदालसा, शकुंतला उपलब्ध करने के लिए क्या किया जा सकता है? इसके लिए भारी माथापच्ची के बाद भी कुछ हाथ नहीं लगता। अरविंद और रमण, रामकृष्ण परमहंस और विरजानंद जैसी हस्तियाँ ही युग निर्माण जैसे महाप्रयोजन को पूरा करने में अग्रिम भूमिका निभा सकती हैं। काम बड़ा है तो उसके अनुरूप व्यक्तित्व भी चाहिए। यह आवश्यकता जब भी जितनी मात्रा में भी पूरी हुई, तब उसी अनुपात से व्यापक समस्याओं के समाधान संभव हुए हैं।

जनसाधारण के लिए तो कर्त्तव्यपालन ही संभव होता है। वे अपनी निज की समस्याओं को सुलझाने में ही अधिकांश क्षमता खो बैठते हैं। जो बचती हैं उससे लोकमंगल का प्रयोजन एक सीमा तक ही पूरा कर पाते हैं। यों बूँद-बूँद से भी घड़ा भरता है पर उन बूँदों का संचय करने और उस संचय का सदुपयोग करने की प्रतिभा भी तो किसी में चाहिए। कुछेक घुने बीजों को छोड़कर प्रायः सबमें उगने की सामर्थ्य होती है। ऊसर जमीनें भी होती तो हैं, पर आमतौर से हर जमीन में ऐसी क्षमता होती है कि उसे थोड़ा प्रयत्न करके उपजाऊ बनाया जा सके। बादलों का पानी टीलों पर रुकता नहीं और वे भारी वर्षा होने के उपरांत भी जलरहित ही बने रहते हैं। इतने पर भी यदि उन्हें थोड़ा खोदा-कुरेदा जा सके तो पर्वत शिखरों पर भी तालाब बन सकते हैं। नदी, सरोवरों के तट पर रहने वालों की तरह उन दुर्गम

स्थानों पर भी उद्यान लग सकते हैं। यह प्रयत्नपरायणता की महिमा का है। किसान अपने घर से फसल नहीं लाता और न माली की जेब में फल-संपदा भरी रहती है। प्राकृतिक साधनों का उपयोग भर वे लोग करते हैं और उसी बुद्धिमत्तापूर्ण नियोजन का लाभ उठाते हैं। बुद्धि हर किसी में मौजूद है। मूढ़ और विक्षिप्त थोड़े से ही होते हैं। हर मस्तिष्क में प्रतिभा रहती है और उसे शिक्षण एवं वातावरण के सहारे विज्ञ एवं प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। अध्यापक और विद्यालय इसी प्रयोजन की पूर्ति करते रहते हैं।

संचित संस्कारों वाली प्रतिभाएँ उन बहुमूल्य हीरों की तरह हैं, जिनमें मौलिक विशिष्टता विद्यमान है, उन पर किया गया थोड़ा सा तराशने, खरादने का प्रयत्न अधिक लाभ और श्रेय दे सकता है। फिर भी उन शिल्पियों का महत्त्व बना ही रहेगा जो घटिया पत्थरों को भी इस प्रकार काटते-घिसते हैं कि उन्हें हीरों का स्थानापन्न बनने का सौभाग्य मिल सके। सोने का अपना महत्त्व है उसे लड़ी के रूप में भी उचित मूल्य पर बेचा जा सकता है। इतने पर भी स्वर्णकारों की कला को सराहा ही जाता रहेगा। वे आभूषण बनाकर सोने को आकर्षण का केंद्र बना देते हैं। यहाँ तक कि घटिया धातु या मिलावट के सहारे ऐसा बना देते हैं कि उससे भी साज-सज्जा का काम चल सके। प्राचीन काल में उपाध्यक्षों के हाथ में यही कला थी, वे मनुष्यों को गढ़ते थे उन्हें सामान्य से असामान्य बनाते थे। संयोगवश कोई सुसंस्कारी आत्मा हाथ लग सके, तब तो उन शिल्पियों को, उनके कौशल को, ढलाई के कारखाने गुरुकुलों को अनोखा ही श्रेय मिल जाता था। संदीपन ऋषि के आश्रम में कृष्ण और विश्वामित्र आरण्यक में राम की ढलाई हुई थी। यही सब प्रयोक्ता धन्य माने जाते हैं।

युग परिवर्तन की महती आवश्यकता पूरी करने के लिए इन दिनों देवत्व से संपन्न आत्माओं को ढूँढ़ निकालना एक बड़ा काम है। साथ ही उन्हें उभारना—प्रशिक्षित परिपक्व करना भी उतने ही महत्त्व

की प्रक्रिया है। तेल के कुएँ ढूँढ़ निकालना एक बड़ी सफलता है, पर उस कीचड़ जैसे खनिज की सफाई करने वाला तंत्र खड़ा न हो सका तो उस ढूँढ़ने भर से भी अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध न होगा। कच्ची धातुओं की खदान खोजने वालों की प्रशंसा होती है किंतु उन्हें पकाने, ढालने का कारखाना न लग सके तो उस भारी मिट्टी से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।

असामान्यों का अस्तित्व रहता तो हर युग और हर क्षेत्र में है, पर खोजने और पकाने की प्रक्रिया शिथिल हो जाने से प्रतिभाएँ जहाँ-तहाँ छिपी और उपेक्षित पड़ी रहती हैं। अभी भी भूमि में इतना वैभव दबा पड़ा है जिसे उपयोग में आने वाली संपदा की तुलना में असंख्य गुना कहा जा सके। सराहना खोज की ही है। उसी के बलबूते प्रस्तुत उपलब्धियाँ करतलगत हो सकी हैं और भविष्य में जो कुछ मिलेगा उसमें खाजी और पकाने वाले ही श्रेयाधिकारी बनेंगे। युग परिवर्तन की परिस्थितियाँ मौजूद हैं। लोकचेतना के अंतराल में असाधारण विक्षोभ है। वह प्रस्तुत परिस्थितियों को बदलने के लिए, घुटन से छुटकारा पाने के लिए आतुर है। स्रष्टा को भी परिवर्तन ही अभीष्ट है। विनाश को निरस्त और विकास को प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया को अध्यात्म भाषा में अवतार और लौकिक भाषा में प्रचंड परिवर्तन कहते हैं। अदृश्य में इसी की परिपूर्ण तैयारी है। भूमिका दृश्य को निभानी है। नसों में समर्थता और मस्तिष्क में प्रेरणा रहते हुए भी काम तो हाथ ही करते हैं। उठना इन्हीं को पड़ता है। चलते तो पैर ही हैं। आकांक्षा भले ही अंत:करण की हो।

महामानवों की भूमिका निभाने की क्षमता जिनमें है, उनकी रुचि अपने अंत:करण के अनुरूप साधन सामने आते ही मचलने लगती है। इस कसौटी पर किन्हीं का भी अंतराल जाँचा जा सकता है। शराबी, जुआरी, व्यभिचारी अपने अनुरूप परिस्थितियाँ देखते ही मचलने लगते और रोकथाम होते हुए भी संपर्क साधने और सहयोग साधने का

ताना-बाना बुनने लगते हैं। बाजीगर का खेल होते ही मनचले बच्चे पढ़ाई छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और तमाशे का मजा लेते हैं। संत, सज्जनों की सुसंस्कारिता भी अपने अनुरूप सामने आने पर न केवल वहाँ किसी प्रकार जा ही पहुँचते हैं वरन रुचि लेने और सहयोग देने का भी प्रयास बिना माँगे ही करने लगते हैं। अंत:प्रेरणा उन्हें उसके लिए विवश जो करती है। पकड़ का यही सबसे सरल तरीका है। सीता की खोज में राम सघन वन में विचरते हैं और लक्ष्मण से कहते हैं, "इस क्षेत्र में सीता होंगी तो नदी तट पर संध्या करने अवश्य आएँगी। चलकर उसे वहीं खोजना चाहिए।" इस प्रसंग से प्रकट होता है कि मूल प्रकृति मनुष्य को किस प्रकार विवश करती है और कठिन परिस्थितियों में भी वह उसकी पूर्ति का प्रयास करता है। युग साहित्य के प्रति अभिरुचि, श्रेष्ठ वातावरण में प्रसन्नता, सत्प्रवृत्तियों में सहयोग— इन तीन प्रयोजनों के इर्द-गिर्द उच्च आत्माएँ इन दिनों जमा हुई पाई जा सकती हैं। अन्य जीवों को सघन वन में देखना हो तो चुपचाप वहाँ किसी जलाशय के निकट बैठ जाना चाहिए। प्यास बुझाने के लिए आने पर उन्हें आँखें भरकर देखा जा सकता है। युग निर्माण योजना के विविध प्रयास ऐसे हैं, जिनमें सामान्य स्तर के लोगों की न रुचि हो सकती है और न उत्साह। सहयोग की बात तो उनके वश से बाहर ही होती है किंतु जिनमें देवत्व के अंश अधिक परिमाण में विद्यमान हैं, वे अपनी मरजी से नए शुभारंभ न कर पाने पर भी जहाँ भी अपने अनुरूप वातावरण देखते हैं, उसमें सम्मिलित हुए बिना योगदान दिए बिना रह ही नहीं सकते।

युगसंधि में देवात्माएँ बड़ी संख्या में अवतार का साथ देने के लिए जन्म लेती हैं। पांडव देवपुत्र थे। हनुमान, अंगद भी देवता थे। इन आत्माओं को अवतरित होने के लिए उपयुक्त माध्यम चाहिए। सदाशयता संपन्न माता-पिता के रज-बीज का आश्रय वे लेते हैं। दुष्ट-दुरात्माओं की उन्हें गंध ही नहीं भाती तो उनसे संबंध कैसे साधें? उनके शरीर में

प्रवेश कैसे करें? स्वायंभुव, मनु और शतरूपा रानी ने तप करके अपनी काया ऐसी बनाई थी कि उसमें देवात्माओं को गर्भ में निवास करते हुए कष्ट न हो। मदालसा, सीता, शकुंतला जैसी महान महिलाएँ ही अपनी कोख से दिव्यात्माओं को जन्म दे सकने में समर्थ हुईं।

इन दिनों यह प्रयास नए ढंग से किए जा रहे हैं कि दांपत्य जीवन में उत्कृष्टता उत्पन्न की जाए। उच्चस्तरीय आत्माओं के जोड़े मिलें। आदर्श विवाह के रूप में उनका शुभारंभ हो। आजकल दैत्य विवाहों का चलन है। आत्माओं की गरिमा कोई नापता नहीं, रूप के ऊपर सब पागल हैं। शादियों में दहेज एवं अपव्यय की धूम रहने से गरीबी और बेईमानी पनपती है। जमा पूँजी की होली जलाकर परिवार का भविष्य अंधकारमय बनाने की प्रक्रिया परोक्ष रूप से अभिशाप ही बरसाती रहती है। जहाँ भी यह प्रचलन होगा, वहाँ सुसंतति की आशा नहीं ही की जानी चाहिए। देव विवाहों से ही देवात्माओं के सुसंतति रूप में जन्म लेने की आशा बँधती है। इसलिए इन दिनों उस प्रचलन पर भी जोर दिया जा रहा है।

दिव्य आत्माएँ यदि किसी प्रकार किसी अनुपयुक्त वातावरण में जन्म ले भी लें तो वहाँ घुटन अनुभव करती हैं और वापस लौट जाती हैं। कितने ही होनहार बालक ऐसी परिस्थितियों में बड़े होने से पहले ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं। बहुमूल्य पौधे और प्राणी जब अपने लिए उपयुक्त जलवायु की माँग करते हैं तो दिव्य आत्माओं को सुसंस्कृत परिवार में रहने और पलने की बात में भी कोई औचित्य है। परिवार-निर्माण अभियान की प्रक्रिया में व्यक्ति और समाज के नवनिर्माण का प्रत्यक्ष उद्देश्य तो सन्निहित है ही उसके पीछे रहस्यमय प्रयोजन ऐसा वातावरण बनाना भी है, जिसमें दिव्य आत्माओं को जन्म लेने और ठहरने के लिए अनुकूलता मिल सके।

गायत्री तीर्थ में बालकों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराने की व्यवस्था इसलिए रखी गई है कि यदि देवत्व की कहीं कुछ विद्यमानता हो तो उसे अभीष्ट परिपोषण

मिल सके। साधकों को शक्तिपात—बड़ों को अनुदान, आशीर्वाद के माध्यम से कई बार महापुरुषों का अनुग्रह मिलता है। बालकों को वह लाभ समर्थ हाथों से उपरोक्त संस्कार कराने से भी उपलब्ध हो सकते हैं और उनके उज्ज्वल भविष्य का आधार बन सकता है।

## जन्म समय के आधार पर आत्मिक स्तर का पर्यवेक्षण

नवसृजन का उत्तरदायित्व प्रज्ञा परिवार के कंधों पर प्रधान रूप से आया है। अतएव यह भी निश्चित है कि देवात्माओं का बाहुल्य ही इसी परिकर में होगा। परिजनों में से आत्मिक स्तर पर कौन किस श्रेणी का है? इसकी जानकारी उनके जन्म समय को जानने से ही मिल सकती है। जन्मकुंडली यदि सही बनी है तो उसके आधार पर मनुष्य के संबंध में रहस्यमय जानकारियाँ प्राप्त हो सकती हैं। अतएव यह सोचा गया है कि वर्तमान परिजनों की जन्मकुंडलियों पर एक बार दृष्टि डाल ली जाए और इस आधार पर जिनमें कुछ विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है उन्हें अधिक अनुदान देने, दिलाने का कुछ ऐसा उपक्रम किया जाए, जिससे वे अपनी विशिष्टता को सार्थक बना सकें।

इस प्रयोजन के लिए सभी परिजनों से उनकी पत्नी तथा बच्चों के सही जन्म समय की माँग की जा रही है। यह शांतिकुंज हरिद्वार के पते पर भेजे जाने चाहिए। इनका निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण विशिष्ट तरीके से किया जाएगा। इनकी जन्म कुंडलियाँ नई बनाई जाएँगी। अन्यों की बनाई हुई कुंडलियाँ अपने पर्यवेक्षण के लिए काम न आ सकेंगी।

खगोलविद्या अति कठिन विषय और विज्ञान है। उसमें गणित प्राय: वैसा ही करना पड़ता है, जैसा कि अंतरिक्षयान छोड़ने तथा उन पर नियंत्रण करने वाले 'कंप्यूटर' करते हैं। ज्योतिष में उच्चस्तरीय गणितज्ञों की आवश्यकता होती है। आज तो लकीर पिटती है। पंचांग हर क्षेत्र का अलग होना चाहिए क्योंकि स्थानों के हिसाब से 'पलभा' बदलता है। तदनुसार हर स्थान के पंचांगों में अंतर पड़ना चाहिए।

आज तो पंचांग निर्माता किसी विशेष नगर की 'पलभा' लेकर पंचांग बना देते हैं। उसी को दूर-दूर के पंडित प्रयोग में लाते हैं। ग्रह गणना का गणित अति कठिन है। उसे कर सकने के लिए एम.ए. से अधिक की ही गणितज्ञता होनी चाहिए और हर छोटे प्रयोजन के लिए पूरा गणित किया जाना चाहिए। आज ऐसी प्रतिभाओं का सर्वथा अभाव है। छपी सारणियों के आधार पर मिनटों में लंबे गणितों का प्रयोजन पूरा कर लिया जाता है। ऐसी दशा में उनका सही होना कठिन है।

ज्योतिष गणना में समय-समय पर हेर-फेर होते रहना आवश्यक है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा ३६० या ३६५ दिन में नहीं करती। उनमें घंटों, मिनट, सेकंडों का अंतर रहता है। वर्ष का सही गणित नहीं बन सका। मोटा अनुमान ही चला आ रहा है। जो आगा-पीछा होता है, उसे अँगरेजी कलेंडर में महीनों की तारीखें न्यूनाधिक करके ठीक किया जाता है। भारतीय गणित में तिथियों का ही नहीं, महीनों तक का क्षय एवं वृद्धिक्रम चलता रहता है। इतने पर भी सब कुछ सच नहीं बैठता। पाँच हजार वर्ष में ग्रहों की स्थिति में और पंचांग की गणना से इतना अंतर पड़ जाता है कि तारकों और ग्रहों के उदय-अस्त में कई बार तो सप्ताहों तक का अंतर देखा जाता है। जो ग्रह अस्त हो गया वह दृश्य रूप में उदय दीखता है। जिसके उदय का उल्लेख है, वह कई दिन पहले अस्त हो चुका होता है। पुराने समय में दृश्य गणित के आधार पर पंचांगों का समय-समय पर परिशोधन किया जाता था। अब वह स्थिति नहीं रही। ऐसे ही अंधेरगर्दी चलती है और जन्म-कुंडलियाँ बनती हैं। उनके आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। इसिलिए जब यह नया काम हाथ में लिया ही गया है तो उसे पूरी जिम्मेदारी और तत्परता से ही पूर्ण किया जाएगा। जिनका भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण करना है, उनकी कुंडली स्वयं ही बनाई और स्वयं ही देखी जाएगी। दिव्य आत्माओं का स्तर समझने और उन्हें पकड़ने का प्रयोजन इससे कम में पूरा नहीं हो सकता।

इस प्रयोजन के लिए अपनी निजी वेधशाला बनाई जा रही है। उसमें आधुनिक और पुरातन दोनों ही आधार रहेंगे। इन दिनों बहुमूल्य 'टेलिस्कोपों' से यह काम पूरा होता है। प्राचीनकाल में वेधशालाएँ इस प्रयोजन को पुराने ढंग से पूरा करती थीं। दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, अहमदाबाद आदि की वेधशालाएँ प्रख्यात हैं। जयपुर नरेश ने इस संबंध में विशेष रुचि ली थी और विशेष निर्माण कराए थे। आज तो वे विद्याएँ एक प्रकार से लुप्त हो ही गई हैं और उन वेधशालाओं का उपयोग करना तो दूर, विनिर्मित यंत्रों का उद्देश्य समझ सकने वाले तक ढूँढ़े नहीं मिलते। यह सारा बिखरा सरंजाम एक जगह इकट्ठा करना और उसमें पूर्वात्य-पाश्चात्य खगोल विद्या का समावेश करना लगभग उतना ही कठिन है, जितना ब्रह्मवर्चस की शोध प्रयोजना। ऐसे कार्य श्रमसाध्य, साधनसाध्य एवं कष्टसाध्य होते हैं। इनके निर्माण में उच्चस्तरीय ज्ञान और प्राचीन आधुनिक का समन्वय करने के लिए अभीष्ट अध्यवसाय की भी आवश्यकता पड़ती है। जो हो, बड़ा काम हाथ में लिया है तो बड़ा प्रयोजन भी पूरा ही करना पड़ेगा। वेधशाला बनाने और आकाशदर्शी दुरबीन खरीदने का प्रयास आरंभ कर दिया गया है। ज्योतिर्विज्ञान का उसे पुनर्जीवन कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

प्रज्ञा परिवार में सम्मिलित प्रतिभाओं का स्तर तथा भविष्य जानने की दृष्टि से इस विज्ञान को नए सिरे से हाथ में लिया गया है। उसमें तीन लाभ हैं, एक तो विज्ञान का स्वरूप निखरने से उसकी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता का लाभ जन-जन को मिलेगा। दूसरे प्रतिभाएँ ढूँढ़ने और उन्हें उपयुक्त दिशा देने में सफलता मिलेगी। तीसरे जिनकी देखभाल की जाएगी, वे अपने लिए सफलता पाने योग्य मार्ग का निर्धारण एवं अनुसरण कर सकेंगे। ज्योतिषियों की तरह फलदिशा बताने, लिखने की बात तो नहीं बनाई गई है पर अधिक सफल होने के लिए दिशा निर्धारण का लाभ तो संबद्ध लोगों में से हर किसी को मिल सके, इसकी व्यवस्था की गई है।

युग सृजन में आंदोलन ही या लोकशिक्षण ही एक काम नहीं है। अनेक साधनों का उत्पादन, अभिवर्द्धन, व्यवस्था, कला, साहित्य, शिल्पी, अन्वेषण जैसे जनहित के अनेकों काम हैं, जिसमें लगना भी जननेतृत्व जैसा ही महत्त्वपूर्ण काम है। अगले दिनों जहाँ अनेक अवांछनीयताएँ निरस्त करनी हैं, वहाँ अनेक सत्प्रवृत्तियों को उपयोगी साधनों को नए सिरे से बनाना-बढ़ाना भी है। इसके लिए यह देखना होगा कि किनमें, क्या जन्मजात विशेषता है, उसे उभारना किन उपायों से संभव हो सकता है और किसे क्या काम करने में सहज सफलता मिल सकती है ? यही जन्म समय और सही गणित के आधार पर बनी हुई जन्म कुंडलियाँ इस प्रयोजन के लिए बहुत सहायक हो सकती हैं। दृश्य गणित का पंचांग इसी आधार पर गत दो वर्षों से सफलतापूर्वक निकाला जाता रहा है।

भविष्यफल बताने का पंडिताऊ ढर्रा अपने यहाँ नहीं है। जिस उद्देश्य के लिए यह खोज की जा रही है, उसी तक सीमित रहा गया है। भाग्य एवं भविष्य बताने में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। शुभ भाग्य कहना अकर्मण्यता उत्पन्न करता है और अशुभ कहने से लोग डरते-घबराते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में संतुलन बिगड़ता है और मनुष्य पुरुषार्थपरायणता छोड़कर कल्पना जगत में विचरना आरंभ कर देता है। अनावश्यक उत्साह यां भय उत्पन्न करना अपना उद्देश्य नहीं। इस राष्ट्र की अपनी खदान में मणि-माणिकों की उपस्थिति का पता चल जाए, वही सबसे बड़ा लाभ है।

## अंतर्ग्रही परिस्थितियों के पर्यवेक्षण के निमित्त विनिर्मित शांतिकुंज की वेधशाला

पृथ्वी का जितना अपना वैभव, उत्पादन है, उसकी तुलना में उसे अंतर्ग्रही भंडार से कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध होता रहता है। अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों से पृथ्वी को बहुत कुछ मिलता है, इससे वह अत्यधिक प्रभावित होती है। यह प्रभाव भले भी होते हैं और बुरे भी।

वे प्राणियों, पदार्थों, वनस्पतियों को, विशेषतया संवेदनशील मनुष्य को प्रभावित करते हैं। उस प्रभाव से समूचे वातावरण में उथल-पुथल होती रहती है। यह कई बार उपयोगी भी होती है और कभी-कभी प्रतिकूल प्रभाव भी डालती है।

इन प्रभावों को जानने की विद्या का ज्ञान ज्योतिष है। उसके द्वारा यह पता चलता है कि ब्रह्मांड में अवस्थित ग्रह-नक्षत्रों की कब-कहाँ कैसी स्थिति है ? सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह पृथ्वी के अधिक निकट हैं तथा परस्पर अधिक सघनता के साथ आबद्ध भी हैं, इसलिए उनका प्रभाव और भी अधिक पड़ता है। अंतरिक्षीय घटनाक्रम की पूर्व जानकारी रहने से हम आएदिन अपनी व्यवस्था बनाते-बदलते रहते हैं। सरदी-गरमी-वर्षा अंतरिक्षीय हलचलें हैं। इनकी पूर्व जानकारी रहने से हमारी कितनी ही योजनाएँ बनती-बदलती रहती हैं, आँधी-तूफान का पूर्वाभास होता है, बचाव का कुछ न कुछ प्रबंध करते हैं।

यह ज्ञात विषय है। मनुष्य के स्वास्थ्य संतुलन एवं वैभव को भी अंतर्ग्रही स्थिति असाधारण रूप से प्रभावित करती है। इस संदर्भ में जिन्हें अधिक गहरी जानकारी है, वे समझते हैं कि पृथ्वी का वैभव ही सब कुछ नहीं है। अंतरिक्षीय वातावरण पर भी मनुष्य की अनुकूलता, प्रतिकूलता बहुत कुछ निर्भर करती है। स्वाभाविक है कि इस संदर्भ में अधिक जानने की इच्छा हो और उस आधार पर दुष्प्रभावों से बचने और सत्प्रभावों से लाभान्वित होने का मन चले। इस जिज्ञासा का समाधान ज्योतिषशास्त्र के सहारे ही हो सकता है। अस्तु, उसका महत्त्व विज्ञान की अन्यान्य धाराओं से कम नहीं माना गया।

धरती और समुद्र से संपदा-सुविधा उपलब्ध करने भर से मनुष्य का काम नहीं चला, अब वह अंतरिक्ष में बिखरे वैभव को समेटने के लिए आतुर है। वायुयानों से संतोष नहीं हुआ। पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूमने वाले उपग्रहों और अंतर्ग्रही यात्रा पर निकलने वाले राकेटों पर प्रचुर धन, साधन एवं बुद्धि-कौशल नियोजित किया जा रहा है। इस आधार पर कि आकाश में विद्यमान अंतरिक्षीय प्रभाव वैभव में से और

कुछ उपलब्धियाँ हाथ लगें, सुरक्षा के अधिक उपाय सूझ पड़ें, यह सब खगोलविद्या के सहारे हो रहा है। खगोल की अंतरिक्ष विद्या का नाम ही ज्योतिष है। उसमें ग्रहों की चाल तथा पारस्परिक घात-प्रतिघात के आधार पर बनने-बिगड़ने वाले तारतम्य को देखते हुए यह पता लगाया जाता है कि उन हलचलों का पृथ्वी पर कब, कैसा, कितना प्रभाव पड़ेगा, वह किसके लिए किस प्रकार उपयोगी या अनुपयोगी सिद्ध होगा?

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान सचेतन अंतर्ग्रही प्रभावों के सूक्ष्म परिणामों की उच्चस्तरीय जानकारी से संबद्ध है, जबकि विज्ञानी मात्र स्थूल ग्रह प्रभावों को समझ पाते हैं। दुर्भाग्य इस बात का है कि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान प्रतिगामिता और निहित स्वार्थों के कुचक्र में पड़कर उपहासास्पद स्थिति वाले गर्त में जा गिरा। भाग्यवाद भविष्य कथन अनिष्ट-श्रेष्ठ जैसी विडंबनाएँ उसके साथ जुड़ गईं। इसके अतिरिक्त उसके सही स्वरूप निर्धारण करते रहने के लिए जो समय-समय पर किया जाना था, उसे भी आलस्य तथा अज्ञान के कारण उपेक्षित कर दिया गया।

सर्वविदित है कि पृथ्वी न तो पूरे २४ घंटे में अपनी धुरी पर घूमती है और न ३६० दिन में सूर्य की परिक्रमा करती है, यह निर्धारण काम चलाऊ है। कुछ मिनट-सेकंड का अंतर पड़ते रहने से कुछ शताब्दियों बाद ऐसी स्थिति आ जाती है कि उस अंतर को दृश्य गणित के आधार पर शुद्ध किया जाए। यों तिथियों के महीनों के क्षय-वृद्धि के आधार पर थोड़ा-बहुत संतुलन बिठाया जाता रहता है, फिर भी अंतर बढ़ता ही रहता है। इसी परिशोधन के लिए दृश्य गणित काम में लाया जाता है और वेधशालाओं के माध्यम से वर्तमान स्थिति को देखकर पुरातन आधार पर बनते आ रहे पंचांगों में सुधार करना पड़ता है। खेद की बात है कि इन दिनों दृश्य गणित के आधार पर चलने वाली संशोधन-प्रक्रिया की ओर भारतीय ज्योतिर्विदों का ध्यान मुड़ ही नहीं रहा है।

आवश्यक समझा गया कि ब्रह्मवर्चस की शोध-प्रक्रिया के अंतर्गत भारतीय ज्योतिषशास्त्र को पुनः प्राचीनकाल जैसी स्थिति में लाया जाए। इस हेतु सर्वप्रथम पुरातन आधार पर वेधशाला बनाने का निश्चय किया गया। शांतिकुंज में इसका निर्माण हुआ है। उसमें प्रायः उन सभी गणित उपकरणों को विनिर्मित किया गया है, जो भारतवर्ष में कहीं भी विद्यमान हैं एवं आज की स्थिति में आवश्यक हैं। यह अपने ढंग की अनोखी वेधशाला है, जो आकार में छोटी होते हुए भी प्राचीनकाल के महान गणितज्ञों द्वारा अपनाए जाने वाले प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण उपकरणों से संपन्न है।

यह प्रयोगशाला इसलिए बनानी पड़ी कि युगसंधि के वर्षों में संसार में बहुत भारी उथल-पुथल होने की संभावना थी। उसमें मनुष्यगत हलचलें कम, दैवी उथल-पुथल अधिक बड़ी भूमिका संपन्न करेगी। ग्रहणों की शृंखला, सूर्य कलंक, धूमकेतु आदि के प्रत्यक्ष और विक्षुब्ध प्रकृति के अप्रत्यक्ष प्रकोप ऐसे हैं, जिन्हें अंतरिक्षीय पर्यवेक्षण के आधार पर ही जाना जा सकता है। अस्तु, ब्रह्मवर्चस शोध-प्रक्रिया के अंतर्गत ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान का तंत्र खड़ा किया गया है।

इसी आधार पर अभिनव पंचांग भी प्रकाशित किया जा रहा है, जो दृश्य गणित के आधार पर ग्रह-नक्षत्रों की सही स्थिति प्रकट कर सकने में समर्थ है। अब नवग्रहों में नेपच्यून, प्लेटो और यूरेनस यह तीन ग्रह और जुड़ गए। नए पंचांग में उनका भी समावेश है और उनकी स्थिति का भी पुराने ग्रहों की तरह ही गणित किया गया है।

मनुष्य पर ग्रह दशा का क्या असर पड़ना चाहिए? इसके लिए यह आवश्यक है कि जन्म-समय का इष्ट सही हो। इसे सही रखने और कुंडली बनाने के लिए स्टैंडर्ड टाइम नहीं वरन स्थानीय समय का सूर्योदय काल चाहिए। जो पंचांग छपते हैं, वे प्रकाशक या लेखक के स्थान की पलभा पर ही बने होते हैं, जबकि पंचांग गणित उस स्थान का होना चाहिए जहाँ कि बालक जन्मा है। आजकल ऐसा नहीं होता है। जोधपुर के पंचांग पर कलकत्ते (कोलकाता) में जन्मे बच्चे की

कुंडली बनती है। होना यह चाहिए कि स्थानीय पंचांग विनिर्मित होते और उसी आधार पर इष्ट अथवा लग्न का निर्धारण होता। यह विद्या एक प्रकार से लुप्त हो चली। जो जानते हैं वे परिश्रम नहीं करते। इस कमी को दूर करने के लिए ब्रह्मवर्चस पंचांग में समूचे आधार का उल्लेख किया जा रहा है ताकि कोई भी ज्योतिर्विद् स्थानीय पंचांग बना सके और सही जन्मकुंडली बनाकर उस आधार पर सही निष्कर्ष निकाल सके। इसे ज्योतिष क्षेत्र की एक नई उपलब्धि ही कहा जाना चाहिए।

युगसंधि की पुनीत वेला में कितनी दिव्य आत्माएँ जन्मी तथा बढ़ रही हैं। उन्हें युग परिवर्तन के समय विशेष भूमिकाएँ निभानी हैं, ऐसे संस्कारवान देवमानव पूर्वजन्मों की विभूतियाँ साथ लाए होंगे, तो ही यह संभव होगा कि वे इन दिनों कोई बड़ा उत्तरदायित्व सँभाल सकें। ऐसी आत्माओं को खोजने और उन्हें परिष्कृत करने की ठीक वैसी ही आवश्यकता पड़ रही है, जैसी कि दशरथ पुत्रों की, दिव्य विशेषताओं का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करके विश्वामित्र उन्हें आग्रह-पूर्वक प्रशिक्षण के लिए ले गए थे। विवेकानंद, शिवाजी, चंद्रगुप्त आदि को उनके दिव्यदर्शी गुरुओं ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से खोजा था और उन संस्कार संपदा वालों को तनिक से प्रयास से उभारकर बड़े-बड़े प्रयोजनों को पूर्ण कराया था।

यह विभीषिकाओं का युग है। उसमें मानवी गतिविधियाँ तो उथल-पुथल के लिए प्रधानतया उत्तरदायी हैं ही, पर कुपित प्रकृति की भूमिका भी कम खतरनाक नहीं है। इस संदर्भ में पूर्वाभास होने की स्थिति में बचाव के कुछ उपाय सोचना और कुछ मार्ग निकालना संभव हो सकता है। ऐसे अवसरों पर अंतर्ग्रही अनुदान भी विपत्ति को टालने और सुखद संभावनाओं का पथ-प्रशस्त करने में सहायक हो सकते हैं। ऐसा तारतम्य बिठाने में भारतीय ज्योतिष के आधार पर ऐसी सूक्ष्म जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जैसी कि भौतिक विज्ञान के आधार पर विनिर्मित एस्ट्रोनोमी के यंत्र उपकरणों से संभव नहीं।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान में मात्र अदृश्य का पूर्वाभास ही एक लाभ नहीं है, वरन अनिष्टों के निवारण और शुभ संभावनाओं के आकर्षण अवतरण का आधार भी विद्यमान है। युगसंधि के दिनों में ऐसे अदृश्य सहयोग की असाधारण आवश्यकता है, जो विनाश के कगार पर खड़ी हुई मानवी सभ्यता एवं धरती को उबार सकने का आधार अवलंबन बन सके।

सामान्य व्यक्तियों को भी इस आधार पर कुछ न कुछ कहा-बताया ही जा सकता है। अशुभ से बचाने और शुभ की ओर इंगित करने पर डूबते को तिनके का सहारा मिल सकता है। राई को पर्वत बनने का ऐसे ही कारणों से सुयोग बनता है। ऐसे अनेक कारण हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए शांतिकुंज में ज्योतिर्विज्ञान की वेधशाला खड़ी की गई है और अनुसंधान के लिए विशिष्ट तत्परता दिखाई गई है।

शांतिकुंज की वेधशाला में जो यंत्र उपकरण लगे हैं, उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) पलभा यंत्र (२) मकर वलय (३) कर्क वलय (४) नाड़ी वलय (५) उन्नतांश (६) चक्र यंत्र (७) कपाल यंत्र (८) दिगंश तंत्र (१०) आधुनिक दूरवीक्षण यंत्र (टेलीस्कोप)।

इनका उपयोग किस ग्रह गणित के लिए किस प्रकार किया जाता है? यह समझना-समझाना उन्हीं के लिए सरल पड़ेगा, जिन्हें ज्योतिष विज्ञान की पूर्व जानकारी है। साधारण व्यक्तियों के लिए तो इतनी जानकारी ही पर्याप्त है कि पुरातन ज्योतिर्विज्ञान के इस विज्ञान-सम्मत स्वरूप से सभी समान रूप से लाभ उठाते रह सकते हैं। इसके लिए ब्रह्मवर्चस शांतिकुंज के ज्योतिर्विज्ञान विभाग से संपर्क कर भलीभाँति समझा जा सकता है।

❐❐

**मुद्रक**—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)